अवेस्तीय आवाँ अरद्वी सूर् यश्त् का आलोचनात्मक अध्ययन

इलाहाबाद विश्वविद्यालय की डी० फिल्० उपाधि हेतु

प्रस्तुत

शोध-प्रबन्ध

निर्देशिका

डॉ० सुचित्रा मित्रा

वरिष्ठ प्राध्यापक, संस्कृत विभाग

इलाहाबाद विश्वविद्यालय, इलाहाबाद

अनुसन्धाता

मनोज कुमार मिश्र

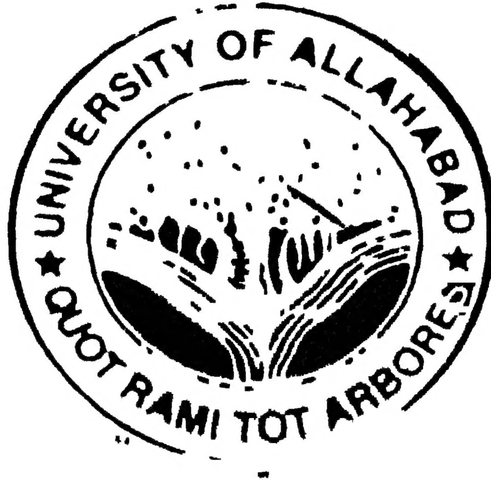
एम०ए० (संस्कृत)

सी०पी० (प्राचीन ईरानी एवं पहलवी)

सीनियर रिसर्च फेलो (यू०जी०सी०)

संस्कृत विभाग

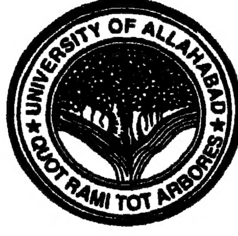
इलाहाबाद विश्वविद्यालय, इलाहाबाद



संस्कृत, पालि, प्राकृत-विभाग

इलाहाबाद विश्वविद्यालय, इलाहाबाद

सन् 2002



इलाहाबाद विश्वविद्यालय
इलाहाबाद- 211002

मै प्रमाणित करती हूँ कि मनोज कुमार मिश्र, पुत्र- श्री राजधर मिश्र द्वारा मेरे निर्देशन मे डी० फिल्० उपाधि हेतु प्रस्तुत **''अवेस्तीय आवाँ अरद्वी सूर् यश्त् का आलोचनात्मक अध्ययन''** विषयक शोध-प्रबन्ध उनकी मौलिक शोधकृति है।

सुचित्रा मित्रा
30-12-2002

(डा० सुचित्रा मित्रा)
वरिष्ठ प्राध्यापक
सस्कृत-विभाग
इलाहाबाद विश्वविद्यालय
इलाहाबाद

प्राक्कथन

आर्य जाति के सस्कृत्युन्मेष की साक्षिणी सस्कृत वाक् की महिमा लोक-विश्रुत है। बाल्यकाल मे ही इस भाषा के सस्कार मेरे मष्तिष्क मे बीजरूपता को प्राप्त हो गये थे। गुरुओ के पादतल की सघनच्छाया मे वे सस्कार-बीज कालानुक्रम मे सवर्धित, पुष्पित एव फलित हुए। वैसे तो गीर्वाणवाणीड्मय ज्ञान एव सद्विचारो की अनन्त धाराओ को समेटे हुए है एवं उन एक-एक धाराओं की एक-एक बूद मे मानव ही नही अपितु प्राणिमात्र का ऐहामुत्रिक कल्याण निहित है, तथापि निस्सदेह वेदराशि सस्कृत-वाड्मयरूपी मणिमाला का सुमेरु है। वेद साक्षात्कृतधर्मा मनीषियो द्वारा दृष्ट एव श्रुतर्षियो की परम्परा से प्राप्त आर्यजाति की अनुपम शेवधि है। वेद सकल ज्ञान-विज्ञान-विधा का मूल है एव वैदिक साहित्य की महनीयता लोक-शास्त्र प्रमाणित है।

उपर्युक्त कारणो से वैसे तो वेद के प्रति मेरी रुचि एव श्रद्धा भी बाल्यावस्था मे ही उत्पन्न हो गयी थी, किन्तु जब प्रयाग विश्वविद्यालय में अध्ययन के समय गुरु के रूप मे 'विग्रहवान् वेद' प्रो हरिशङ्कर त्रिपाठी जी मिले, तब वैदिक साहित्य के प्रति मेरी ज्ञान-पिपासा तीव्र हो गई। एम ए प्रथम वर्ष मे भाषा-विज्ञान का अध्यापन करते समय गुरुदेव जब वैदिक शब्दो के साथ अवेस्तीय शब्दो की तुलना प्रस्तुत करते थे, तो यह बात मेरे मष्तिष्क मे कौधती रहती थी। इन्ही सब कारणो से एम ए द्वितीय वर्ष मे मैने वेदवर्ग का चयन किया। गुरुवर्य 'ज्ञानविधूतपाप्मा' प्रो हरि-शङ्कर त्रिपाठी जी के चरणाब्ज की सन्निधि मे प्रतिदिन 4-5 घण्टे बैठकर वेद एव अवेस्ता का मैं मनोयोगपूर्वक अनुशीलन करता था।

एम ए परीक्षा उत्तीर्ण करने के उपरान्त प्रिय विषय होने के कारण मैने अवेस्तीय विषय पर शोध करने का निश्चय किया एव प्रस्तुत विषय पर शोधकार्यरत हो गया। इसी मध्य वि.अ आ की जे.आर एफ भी प्राप्त हो गई, अतः शोधकार्य मे किसी भी प्रकार का आर्थिक विघ्न नहीं उपस्थित हुआ। भगवती वाग्वदिनी के कृपाकटाक्ष से यह कार्य पूर्ण होकर विद्वत्तल्लजो के समक्ष नीर-क्षीर-विवेकार्थ प्रस्तुत है। चूकि सम्पूर्ण शोध-प्रबन्ध मे ही वेद एवं अवेस्ता के पारस्परिक सम्बन्ध का वैशद्येन विवेचन है, अतः यहाँ कुछ कहना पुनरुक्ति मात्र ही होगी, केवल पिष्टपेषण होगा।

गुरुदेव प्रो. हरि-शङ्कर त्रिपाठी जी की वैदुषी एव शोधचातुरी प्रेरक तत्त्व के रूपमें

सर्वदा उपस्थित रही एव उनका छलकता हुआ वात्सल्य सभी कठिनाइयो को सहजता से पार कर जाने मे साहाय्य के रूप मे उपस्थित रहा। आदरणीया डॉ सुचित्रा मित्रा जी के वैदुष्य सवलित मार्गदर्शन से मै पदे-पदे अनुग्रहीत होता रहा हूँ, किन्तु इनके प्रति कृतज्ञता ज्ञापन केवल औपचारिकता ही होगी। कृतज्ञता के रूप मे गुरु-ऋण का वहन करना मेरे लिए एक आह्लादपूर्ण अनुभूति है। आदरणीय गुरुजनो प्रो चण्डिका प्रसाद शुक्ल, प्रो सुरेश चन्द्र पाण्डेय, प्रो सन्त नारायण श्रीवास्तव, प्रो मृदुला त्रिपाठी, प्रो चन्द्रभूषण मिश्र, प्रो राजलक्ष्मी वर्मा, डॉ० राम किशोर शास्त्री, डॉ० शङ्कर दयाल द्विवेदी एव सस्कृत विभाग के अन्य गुरुजनों का आशीर्वाद अहर्निश मेरे साथ रहा, एतदर्थ मै इन सुधीजनो के श्री चरणो मे कोटिशः प्रणाम निवेदित करता हूँ।

इस कार्य की सफल एव निर्विघ्न पूर्णता मे मेरे पारिवारिक सदस्यो विशेषतः ममत्व मूर्ति माता श्रीमती फूल कुमारी मिश्रा, पूज्य पिता जी श्री राजधर मिश्र एव गुरुमाता परमवात्सल्यमयी श्रीमती गीता त्रिपाठी का अनेकविध सहयोग रहा, अतः मै उनके चरण कमलो मे अगणित प्रणतितति निवेदित करता हूँ। प्रिय मित्रो श्री विजय कुमार पाठक (एडवोकेट), श्री विनय कुमार शुक्ल (प्रवक्ता-राजकीय स्नातकोत्तर महाविद्यालय, उत्तरकाशी, उत्तराचल), श्री मनीष कुमार पाण्डेय (आई ई एस), श्री रवि शकर पाण्डेय एव गन्धर्व-विद्या के उदीयमान नक्षत्र मदन मोहन मिश्र आदि का ऐसे पूत अवसर पर स्मरण करना भी मेरा धर्म है, जो सदैव मेरे दुःख-सुख के साथी रहे है। प्रिय पत्नी श्रीमती मिथलेश कुमारी मिश्रा एव अनुजो इन्द्र कुमार मिश्र एव पवन कुमार मिश्र ने भी अनेक प्रकार से मेरा सहयोग किया अतः वे भी मेरे आशीर्वाद के पात्र है।

जयहिन्द कम्प्यूटर्स के निदेशक श्री आलोक श्रीवास्तव एव इनके अनुज अतुल श्रीवास्तव तथा समर बहादुर सिह ने श्रम पूर्वक इस कठिन कार्य को उचित समय पर पूर्ण किया, अतः इन सबके प्रति धन्यवाद व्यक्त करना मेरा धर्म है। अन्त मे मै उन समस्त मनीषियो के प्रति सादर आभार प्रकट करता हूँ जिनकी कृतियों से न्यूनाधिक लाभान्वित हुआ हूँ।

मनोज कुमार मिश्र

(मनोज कुमार मिश्र)
शोधच्छात्र
सस्कृत विभाग
इलाहाबाद विश्वविद्यालय
इलाहाबाद

विषय-सूची

1

भूमिका

भूमिका

अवेस्ता पारसीको का धर्मग्रन्थ है। अवेस्ता का पारसीक धर्म मे वही स्थान है जो वेदो का हिन्दू-धर्म मे। अवेस्तीय साहित्य अहुरोपासक प्राचीन ईरान के निवासियो के ऋतम्भरा प्रज्ञा की उपज है। अवेस्तीय साहित्य की रचना भूमि का प्राचीन नाम पर्शिया अथवा फारस था। उससे भी पूर्व इस पवित्र भूमि का अभिधान 'अइर्येन वएजह्' था, जिसका सस्कृत रूपान्तर आर्यायण व्यचस् है। खीश्त-सवत् (सन्) 1935 मे उपर्युक्त देश का नामकरण ईरान हुआ। ईरान शब्द निश्चिततया अवेस्तीय 'अइर्येन' से ही विकसित है। जिस प्रकार वेद भारतीय सस्कृति एव साहित्य के अनुशीलन की दृष्टि से महत्वपूर्ण है, उसी प्रकार ईरानी सस्कृति एव साहित्य के अनुशीलन की दृष्टि से अवेस्तीय साहित्य। भाषा, समाज, देवशास्त्र एव इतिहास के आलोक मे अवेस्ता का वेदो से नेदीयान् सम्बन्ध है।

अवेस्ता शब्द की व्युत्पत्ति- अवेस्ता का पह्लवीरूप अविस्ताक् उत् जन्द् है एव पाजन्द मे इसकी सज्ञा 'अवस्ता' है। प्रो०अन्द्रियस इसका नाम 'उपस्ता मानते है, जिसका अर्थ है-बुनियाद[1] जो सम्भवतः उप+स्था से निष्पन्न है। थकार का अल्पप्राण होकर तकार हो गया है। प्राचीन फारसी शिलालेख मे उपस्ता शब्द का प्रयोग सहायता के अर्थ में हुआ है[2]

''पसाव अदम् अउर-मज्दाम् पतियावह्यइय्। अउर-मज्दा मइय् उपस्ताम् अबर।

अर्थात इसके बाद मैने असुरमेधा से सहायता मॉगी। असुरमेधा ने मुझे सहायता दी।

नइर्यसघ इसको 'निर्मल श्रुति' कहता है।

प्रो० क्षेत्रेश चन्द्र चटट्रोपाध्याय 'आ' उपसर्गपूर्वक 'विद् लाभे' से 'अवेस्ता' शब्द को निष्पन्न मानते है। साधनिका इस प्रकार है-आ+विद्+क्त=आवित्त। जिस प्रकार मद्+क्त=मत्त का फारसी भाषा मे 'मस्त' इस रूप मे विपरिणाम होता है, उसी प्रकार से आवित्त (आविस्ता)> अवेस्ता हो गया। अन्त्यस्वरवृद्धि छान्दस सादृश्य के कारण हुआ है। प्रो० चट्टोपाध्याय के अनुसार इसका अर्थ है परमेश्वर से प्राप्त।[3]

---

1 The word Avıstak can be traced back to the old form "Upasta" and thus sıgınfıes "Foundatıon" "Foundatıon text" M F Kanga, Avesta Part 1, Introductıon Page 4

2 धारयद्वसु, बहिस्तन शिलालेख (प्रथम प्रकोष्ठ)

3 वेदावित्तप्रकाशिका - पृष्ठ 3

मेरा मन्तव्य है कि 'अवेस्ता' शब्द् को आ+विद् ज्ञाने से निष्पन्न करना अधिक समीचीन होगा। यह ध्यातव्य है कि 'विद्' धातु सामान्य ज्ञान का वाचक नही अपितु प्रातिभ ज्ञान का वाचक है जर्मन भाषा मे सामान्य ज्ञान के अर्थ मे 'Kennen' (अग्रेजी-Know) जो कि प्रा० फास्सी रव्शना' यद्वा सस्कृत के ज्ञा धातु से ।वकसित है, का प्रयोग होता है किन्तु प्रातिभ ज्ञान के लिए Wissen का प्रयोग होता है, जो सस्कृत के विद् धातु से विकसित है। अग्रेजी 'wit' मे इसका अर्थ कुछ सीमा तक सुरक्षित है। चूकि प्रत्यक्षज्ञान यद्वा दर्शन सबसे उत्तम माना गया है इसीलिए अग्रेजी मे 'Vision' का अर्थ दर्शन हो गया। भारतीय परम्परा भी वेदो को ऋषिदृष्ट पूर्ण ज्ञान मानने की रही है।[1] प्रो० चट्टोपाध्याय भी वेद के समान ही अवेस्ता को ज्ञानार्थक विद् धातु से भी निष्पन्न मानते है।[2]

प्रारम्भ मे अवेस्तीय वाड्मय एकविशति नस्कमय था, जो शतधा विभक्त था। ग्रीस आक्रान्ता अलक्षेन्द्र ने विपुलकाय अवेस्ता साहित्य को नष्ट कर दिया। दीनकर्त् नामक ग्रन्थ मे समग्र नस्को का वर्णन उपलब्ध होता है। एतद्ग्रन्थानुसार वर्तमान अवेस्ता मूल का चतुर्थ भाग मात्र अवशिष्ट है। अवेस्ता ग्रन्थ की मातृकाओ के दो रूप विद्यमान है। एक मे केवल मूल अवेस्ता ग्रन्थ का पाठ पारायणक्रम[1] से सन्निविष्ट है। अवेस्ता के चार प्रधान विभाग है- (1) यस्न (2) विस्पॅरॅद् (3) वेन्दिदाद् (4) यश्त्। पारायणक्रमानुसारी पाठ मे जन्द नामके व्याख्यान का सन्निवेश नही है। इसमे यस्न भाग के प्रथम अध्याय के प्रथमाश से आरम्भ होता है, उसके बाद विस्पॅरॅद् विभाग का प्रथम अध्याय, तत्पश्चात् यस्न का शेष भाग, उसके बाद द्वितीय यस्न का प्रथमाश पुनः विस्पॅरॅद भाग का द्वितीय अध्याय आता है। यही क्रम आगे भी चलता रहता है। विस्पॅरॅद के बारहवे अध्याय के बाद वेन्दिदाद् भाग का प्रथम अध्याय आता है। सबसे अन्त मे यस्न भाग का अन्तिम अध्याय आता है। इन तीनो विभागो का अलग-अलग पाठ नही होता है।[3] कर्म काण्ड की दृष्टि से सबसे महत्त्वपूर्ण होने के कारण इस पाठ का नाम वेन्दीदाद् सादह् है।[4]

---

1 अ ऋषिर्दर्शनात्। स्तोमान्ददर्शेत्यौपमन्यव । तदय्देनास्तपस्यमानान् ब्रह्म स्वयम्भ्वभ्यानर्षत् तदृषीणामृषित्वमिति विज्ञायते। (निरुक्त 2 11)

ब सर्वज्ञानमयो हि स । मनु -2-7

2 वेदशब्दवदय ज्ञानार्थकाद् विद्-धातोर्निष्पन्न । वेदावित्तप्रकाशिका - पृष्ठ 3

3 These three books are not generally recited each as a separate whole, but with hās are frakarts of one book mingled with another for liturgical purposes and the collecion is called the "Vendīdād Sādah" or "Vendidad pure" i e text without commentary"

4 कर्मकाण्डदृष्ट्या वेन्दिदाद्विभागस्य अभ्यर्हितत्वात् पाठस्यास्य वेन्दीदाद् सादह् इत्याख्या दृश्यते वेदावित्तप्रकाशिका, प्रो क्षेत्रेशचन्द्र चट्टोपाध्यायकृत पृष्ठ -4

अवेस्ता के दूसरे रूप मे क्रमानुसार मूलपाठ है और उसके साथ पह्लवी भाषा मे लिखी गयी टीका है। इसी पाठ की सज्ञा 'अवस्ताक् उत् जन्द' है। यहॉ जन्द शब्द (अवेस्ता-आजइन्ति) अवेस्तीय पाठ के पारम्परिक व्याख्यान को इङ्गित करता है। इसी भ्रम मे कुछ लोगो ने इसे जेन्दावेस्ता इस रूप मे प्रथित किया।[1] डॉ० वेस्ट ने उपर्युक्त स्खलति का खण्डन किया है।

अवेस्तासम्बद्ध कुछ विशेष तथ्यो की प्रस्तुति के पश्चात् अब अवेस्ता विभाग का विस्तृत परिचय अवसरप्राप्त है। अवेस्ता के पूर्वोक्त प्रधान विभागचतुष्टय के अतिरिक्त दो और अप्रधान विभाग है-

1 स्वल्पकाय पाठ्य, न्यायिश्न, गाह् इत्यादि।

2 उद्धरण यथा- हाधोख्त् नस्क, विश्तास्प सास्त नस्क आदि।

कुछ सुधीजन 'यस्न' विस्पॅरॅद् एव वेन्दिदाद् को ही प्रधान प्रभाग मानते है, एवं 'यश्त्' को भी अप्रधान प्रभाग की कोटि मे रखते है।

यस्न-यस्न शब्द सस्कृत यज्ञ का प्रतिरूप है, जिसके मूल मे यज् धातु

है पाणिनिधातुपाठ मे इसके तीन अर्थ है-पूजा, सङ्गतिकरण एव दान-"यज् पूजासङ्गतिकरणदानेषु"। यहॉ प्रथम अर्थ ही प्रधान है अन्य अर्थ गौण। इस प्रभाग का प्रमुख विषय पूजन है। यह प्रभाग 72 अध्यायमय है। अध्यायो की सज्ञा 'हा' अथवा 'हाइति' है। यस्न त्रिधा विभक्त है।

प्रथम भाग का आरम्भ अहुरमज्दा एव यजतो के आह्वान से होता है। (हा-1-27) इसके अन्तर्गत वेदोक्त सोम के समान 'हओम' के सवन एव अर्पण तथा पवित्र द्रओनार्पण सम्बद्ध पाठ्य दिये गये है। 'हा' 12 में जरथुश्त्र के वश का वर्णन है। द्वितीय भाग मे गाथाए गीत, स्तोत्र जो पद्यमय है, एव इनमे जरथुश्त्र की शिक्षाओ, उपदेशो एव प्राकट्य का समावेश है। गाथाओ की सख्या 5 स्वीकृत है। इन गाथाओ की रचना छन्दों मे हुई है। गाथा भाग अवेस्ता का सबसे प्राचीन अश माना जाता है। पॉचों गाथाए कुश्ती के 72 रश्मियों के आधार पर 72 यस्नों मे विभक्त है। ये गाथाएं अपने-अपने आद्य शब्दों[2] के नाम पर तत्तत् अभिधानो

1 Here the word zand (Avesta Azainti) signifies the traditional exposition of Avestan Text Through a misunderstanding the phrase is wrongly termed zend avesta M F Kanga, Avesta Part - 1, Introduction Page 8

2 M F Kanga Avesta Part 1, Introduction Page 8

से मण्डित है। यथा-

1 अहुनवइति गाथा 2 उश्तवइति गाथा 3 स्पन्तामइन्युश गाथा

4 वोहुक्षत्र गाथा 5 वहिश्तो इश्ति गाथा।[1]

गाथा भाग के बीच मे ही (हा/35-41) 7 अध्याय 'यस्न हप्तङ् हाइति' के नाम से सकलित है। 'यस्न हप्तङ् हाइति' गद्यमयी भाषा मे लिखित है। यह भाग गाथाओ की अपेक्षा अर्वाचीन एव परवर्ती यस्नो से प्राचीन है, तथा इसमे अहुरमज्दा, अमॅषस्पॅन्ता, पवित्रात्माओ, अग्नि, जल तथा पृथ्वी की प्रार्थनाओ एव माहात्म्य का वर्णन है। इसमे गाथाओं की अपेक्षा धर्म का अधिक विकसित रूप प्राप्त होता है।

यस्न के तीसरे भाग मे (हा/52, 55-72) जिनको 'अपर यस्न' भी कहा जाता है, मे विभिन्न यजतो (पूज्यो) की प्रशसा एव कृतज्ञता-ज्ञापन व्यक्त हुआ है।

2 विस्पॅरॅद् (अवेस्ता-विस्पेरतव) स० विश्वेऋत्विज: का विकास है जिसका अर्थ 'सभी पुरोहितगण' है। यह यस्न भाग का पूरक है। भाषा एव रूप की दृष्टि से यह यस्नाश से साम्य रखता है। यह भाग 23 अध्यायो से युक्त है, जिनकी सज्ञा 'कर्त' है। कर्मकाण्ड मे यह यस्नाश के मध्य आपतित है। 'सभी ऋत्विजों' के सत्कारार्थ आह्वान एव स्तुतिया इसका प्रमुख विषय है। प्राचीन यस्न कर्म सोलह ऋत्विजो द्वारा सम्पादित होता था, बाद मे इस कर्म को आठ ऋत्विज् सम्पादित करने लगे। अब इसको दो ऋत्विज् सम्पादित करते है।

यश्त्- इसका संस्कृत समरूप 'यजत'[2] है। वेद मे, यजत शब्द का अर्थ पूज्य है। धातु मे कर्मणि अतच् प्रत्यय जोडने पर यजत शब्द बनता है। इसका आधुनिक फारसी रूप-एजद (ईश्वर) है। इस भाग मे इन्ही पूज्यो की स्तुतियो का सग्रह है जो वैदिक देवताओ के प्रतिरूप है। प्रत्येक देवता के लिए एक सम्पूर्ण यश्त् है। यश्त् शब्द स्वय मे एक विशेषण है, जो अवेस्तीय देवताओ के साथ सम्बद्ध है। यह अवेस्तीय भाग पद्यबद्ध है। M F Kang के अनुसार यश्त् और यस्न में यह अन्तर है कि जहॉ यस्न उस यश्तो का सग्रह है, जो अहुरमज्दा अमॅषस्पॅन्ता एव यजतो को समर्पित है वही यश्त केवल एक या अहुरमजदा

---

1 अहुनवइति गाथा - हा 28-34, उश्तवइति गाथा हा 43 - 46 स्पन्तामन्युश गाथा 47-50, वोहूक्षथ्र गाथा हा 51, वहिश्तोइश्ति गाथा- हा 53 ।

2 याति शुभ्राभ्यां यजतो हरिभ्याम् ऋ 1 35 3

अथवा अमॅषस्पॅन्ता मे किसी एक अथवा यजतो मे किसी एक के वन्दन मे प्रयुक्त है।[1] इन यश्तो की सख्या 21 है। यश्तो मे पर्याप्तमात्रा मे पौराणिक, ऐतिहासिक सामग्री बीजरूप मे विद्यमान है, जिसकी अभिव्यक्ति शताब्दियो बाद शाहनामा मे दिखाई पडती है। सभी 21 यश्त् एक व्यक्ति या एक काल की रचनाये नही है। वेदो के समान इनका भी प्रणयन विभिन्न व्यक्तियो द्वारा विभिन्न समयो मे हुआ।

वेन्दिदाद्:- (अवेस्ता-विदएवदात) स० विदेवधित > विदेवहित दएवविरोधी नियमो का संकलन है। यह जरथुश्त्री आचारसहिता 22 अध्यायो में विभक्त है। इन अध्यायो को फ्रकर्त् नाम से जाना जाता है। इसके प्रखण्ड काल एव रचनाशैली मे वैभिन्य रखते है। अधिकाशत: इसकी रचना परवर्ती काल की है। प्रथम अध्याय (फ्रकर्त्) मे अहुर द्वारा बनाये गये देशो एव उसके विरोध मे 'अङ्रोमइन्यु' द्वारा उत्पादित रोगो का वर्णन है, द्वितीय अध्याय मे यम से सम्बन्धित गाथा, स्वर्णकाल और विनाशकारी शीत के आगमन और ईरानी जलप्लावनादि का वर्णन हुआ है। तीसरे फ्रकर्त् मे अन्य बातो के अतिरिक्त कृषि एव श्रम का माहात्म्य प्रतिपादित है।

चतुर्थ मे वैध सम्बन्धो के वर्णन के साथ-साथ आघातो एवं दण्डो का वर्णन है। 5-12 मे मुख्यतया शुद्धीकरण की विधिया है। 13-15 तक श्वानोपचार मुख्य विषय है। अध्याय 16-18 विभिन्न प्रकार के अशुद्धियो के दूरीकरण से सम्बद्ध है। 19वे अध्याय मे देवविदूरीकरण एव शेष 20-22 मे मुख्यतया भैषज्यकर्म प्रतिपादित है। इस प्रकार वेन्दिदाद् मन्वादि स्मृतियो एव बाइबिल के '**Pentateuch**' से समानता रखता है।

इस प्रकार अवेस्ता के प्रधान विभागों की विवेचना के उपरान्त अन्य अप्रधान विभागो पर ईषद्विचार कर लेना भी समीचीन होगा-

खुर्तक् अवेस्ता:- यह पुरोहितो एवं सामान्य जन द्वारा नित्य प्रयोग किये जाने वाली प्रार्थनाओ का लघु सग्रह है, जैस न्येषेष यद्वा न्याइश्न्, गाह् इत्यादि। न्येषेष पॉच लघु प्रार्थनाओ का सकलन है। इनमे सूर्य, चन्द्र, जल, अग्नि एव इनके अभिमानी यजतो ख्वर्शीत् मिथ्र, माह् एव आतर् का सम्बोधन हुआ है। गौण पाठ्यो के शीर्षक नीचे ही (दिन के) पॉच कालो की आत्माओं के सम्बोधन से युक्त 5 गाह् आते है।[2]

---

1 Averta Part - 2, Introduction, Page - VII

2 हावन् गाह्, रपिथ्विन् गाह्, उजीरिन् गाह्, अइविस्रूथ्रॅम् गाह्, उषहिन् गाह् ।

हाधोख्त नस्कः- इसमे 3 फ्रकर्त् है। प्रथम मे अषॅम्वोहू मन्त्र के पाठ की महिमा का वर्णन है। दूसरे एव तीसरे फ्रकर्त् मे मृत्यूपरान्त आत्मा के भाग्य के बारे मे बतलाया गया है। इसके अलावा भी 'विश्तास्प यश्त्' आदि कुछ छिट-पुट सामग्रिया भी उपलब्ध है।

अवेस्तीय धर्म एवं ज़रथुश्त्र

जरथुश्त्र अवेस्तीय धर्म का प्रवक्ता है। जरथुश्त्र पद की अनेकविध व्युत्पत्तिया मान्य विद्वानो द्वारा प्रस्तुत की गयी है। यथा 'जर् वस्त' इसका अर्थ है सुनहरा साम्राज्य। सस्कृत घ्वृ > घृ (> हर्य > हिर्) से जर् पद विकसित है।[1] घ्वृ > घृ से ही अंग्रेजी Glow, Glitter, Gold जर्मन Gelb, अग्रेजी Yellow पद व्युत्पन्न है। 'वस्त' का अर्थ 'साम्राज्य' अथवा 'निवास स्थान' भी सम्भव है, जो वैदिक पस्त्या का समरूप है-

निषसाद धृतव्रतो वरुणः पस्त्या स्वा।

साम्राज्याय सुक्रतुः।।[2]

जर्वस्त से जरथुस्त्र शब्द निष्पन्न है।

परन्तु इस व्युत्पत्ति को मानने पर कुछ ध्वनिसम्बन्धी अनिराकरणीय आपत्तिया है। यह कि थकार एव रेफ का आगम कैसे हुआ। अतः यह व्युत्पत्ति सन्तोषप्रद नही है।

हेनरी लार्ड[3] जरत्-उश्त्र इस रूप मे इसकी व्युत्पत्ति करते है जिसका अर्थ है 'अग्निसखा'। ज़रत् पद अग्निवाचक है, जो सस्कृत घ्वृ > ज्वल् > जर् (रलयोरभेदः) अवधी-जरना का शत्रन्त रूप है। उश्त शब्द मित्र का वाचक है, जो सस्कृत वश्[4] धातु से बना है। अवेस्ता मे उश्ता पद अनेक बार आया है जिसका अर्थ प्रकाशक, कामनाकृत् है।[5]

बर्नफ ने जरथुश्त्र पद को जरथ् उश्त्र, 'वृद्ध बैलो वाला' इस प्रकार व्युत्पन्न मानते

---

1 अवेस्ता कालीन ईरान - डॉ हरिशकर त्रिपाठी पृष्ठ 21

2 ऋग्वेद 1/25/10

3 Religion of the Parsees, Page 52, London - 1630

4 ता वा वास्तून्यूश्मसि गमध्यै। ऋक् 1 154 6

5 उश्ता अस्ती उश्ता अह्माइ ह्यत् अषाइ वहिश्ताइ अषम्। अवेस्ता, यस्न, हा 49 13

है। सस्कृत मे जरदष्टि, जरद्गव आदि पद प्राप्त होते है' दर्मस्तेतर एव बार्थोलोमाय भी इस निर्वचन के प्रति श्रदालु है।

इसी प्रकार जार्ज रावलिसन 'जिरु-इश्तर' इश्तर का बीज। अस्कोली-''जरत्-वास्त्र'' स्वर्णिम साम्राज्य। कसर्तेली जरत् उश्त्र '' हलदुष्ट्र:'' ''ऊँट से हल जोतने वाला'' इत्यादि अर्थ किये है।

प्रो० क्षेत्रेश चन्द्र चट्टोपाध्याय ने जरशुश्त्र पद का सस्कृत प्रतिरूप जरठोष्ट्र माना है-

जरथुश्त्र शब्दस्य सस्कृतभाषाया प्रतिरूप जरठोष्ट्र इति मे प्रतिभाति (वेदावित्तप्रकाशिका, पृष्ठ-5) मै इसमे एक और सम्भावना जोडना चाहता हूँ- जृ > गृ धातु का अर्थ है 'स्तुति करना' अत: जरत् पद का अर्थ है 'स्तुतिकर्ता' एव 'जरथुश्त्र' का अर्थ है ऊँट के लिए प्रार्थना करने वाला।

जृणदुष्ट्र (गुणदुष्ट्र:)। यद्यपि सस्कृत भाषा की दृष्टि से इस प्रकार के समास नही बनते।

अवेस्ता मे जरथुश्त्र की उष्ट्र-याच्ञा का स्पष्ट प्रमाण उपलब्ध है-

तत् थ्वा पॅरसा अरश् मोइ वओचा अहुरा कथा अषा तत् मीज्द्वम हनानि दसा अस्पो अर्शनवइतीश् उश्त्रम् च।[1]

जरथुश्त्र ने अवेस्तीय धर्म को एक परिमार्जित स्वरूप प्रदान किय। प्राचीन ईरानी धर्म जरथुश्त्र के सत्प्रयासो से विश्व के महान् धर्मो मे अन्यतम बन गया। इस धर्म की सबसे बडी विशेषता यह है कि यह अहुरमज्दा की सर्वोच्चता एव उपास्यतमता का विश्वासी है-

तम् नॅ यस्नाईश् आरमतो ईश्मिमध्जो

यॅ आन्मॅनी मज्दो स्रावी अहुरो।।[2]

अर्थात् जो अपने ऋत के कार्यो से अहुरमज्दा के नाम से प्रथित है हम उसकी पूजा करते है।

आगे जरथुश्त्र कहते है कि असुरमेधा सुकृत को सर्वाधिक स्मरण करता है। जिन

---

1 अवेस्ता, यस्न - 44 18

2 अवेस्ता, यस्न - 45 10

सुकृतो को प्राचीन काल मे देवो एव मानवो ने किया, जो भविष्य मे किये जाएगे। वह विचारक असुर जैसी कामना करता है, वैसा हमारे लिए हो जाता है-

मज्दो सख्वार मइरिश्तो

या जी वावरजोइ पाइरी चिथीत्।

दएवाइश्च मश्याइश्च।

या च वरॅशइते अइपि चिथीत्

ह्वो विचिरो अहुरो।

यथा नॅ अड्हत् यथा हो वसत्। गाथा 29/4

इस प्रकार असुरमेधा के प्रति जरथुश्त्र-अनुराग के कारण उपर्युक्त विश्वास मज्दावाद मेधावाद (Mazdaism) सञ्ज्ञाभाक् हुआ।

जरथुश्त्र एक ऐतिहासिक व्यक्ति है।[1] यद्यपि उसके आभा-मण्डल के साथ कुछ कल्पनाये भी जुडी है, जो कि अवेस्ता के गाथातिरिक्त भागों मे पर्याप्त रूप से अभिव्यक्त हुई है। यद्यपि इन अशो मे भी उसका मानवीय चरित्र स्पष्ट रूप से दृष्टिपथ मे आता है। ऐतिहासिक दृष्टि से ज़रथुश्त्र से सम्बद्ध अल्प सामग्री ही उपलब्ध है अतः स्वाभाविक है कि उसके जीवन एव चरित के बारे मे विद्वानो में ऐकमत्य न हो।

अवेस्ता, दीनकर्त्, शहनामा आदि ईरानी स्रोतो के अतिरिक्त यूनानी एव रोमन लेखको ने भी उसके जीवन पर न्यूनाधिक प्रकाश डाला है। यूनानी एवं रोमन लेखको के मतानुसार वह 'मग' का प्रमुख प्रवक्ता था यूनानी लेखक हेरोडोटस। जिसे इतिहास का जनक माना जाता है, के अनुसार 'मग' एक जाति है न कि पुरोहित कुल ।[2] दीनकर्त् में अवेस्ता व ज़न्द को मग पुरोहितो की रचनाये बताया गया है।[3] इन्ही कारणो से अवेस्तीय धर्म को मगवाद भी कहा गया। प्रथम बार मग ब्राह्मण 6वी शताब्दी ई पू मे भारत मे भी प्रविष्ट हुए[4]- स्कन्द,

---

1 Zoroaster the prophet of ancient iran page - 4 A V William Jackson London - 1901

2 Zoroaster The Prophet of Ancient Iran Page - 7

3 दीनकर्त - 4 21, 4 34

4 The Maga Brahmanas - A Historical Approach - C D Pandey, Citi-Vithika Vol-5 Nos 1-2 1999-2000

भविष्य, साम्बादि पुराणो मे मग ब्राह्मणो का विस्तृत वर्णन प्राप्त होता है।[1]

पारसीक धर्म के प्रखर प्रवर्तक जरथुश्त्र की जीवनावधि के बारे में भी मतैक्य नही है। W E West ने उसका काल 660-583 ई०पू० निर्धारित किया है। सीरिया देशीय सम्प्रदाय इनका जन्म 631 ई०पू० व मृत्यु 544 ई०पू० बतलाता हैं। ऐसी धारणा है उसका जन्म इन्डस एव टिग्रिस के मध्य मे हुआ था।[2] प्रो० क्षेत्रेशचन्द्र चट्टोपाध्याय के मतानुसार जरथुश्त्र का जन्म 631 ई० पू०मे हुआ था, यह सीरियादेशीय सम्प्रदाय ही स्वीकार करने योग्य है। उनके मतानुसार उसका जन्म ईरान देश के उत्तरपश्चिम दिग्भाग मे 'अइरेन वएजह' विषय के 'रगा' नामक नगर मे हुआ था।[3] मीद उसका कार्यस्थल था। उसकी शिक्षा उभयत्र सम्पन्न हुई। धर्मसम्बन्धित कार्य के लिए वह पूर्व मे सेइस्तान एव तूरान मे भी रहा था। उसके पिता का अभिधान 'पोउरुषास्प' एव 'दुग्धोवा' उसकी माता का नाम था। अवेस्ता मे अनेकत्र उसके लिए 'स्पिताम' इस विशेषण का प्रयोग हुआ, जो इसके कुल का नाम था। एक किवदन्ती के अनुसार एक देवदूत ने हओम (सोम) वृक्ष मे प्रवेश किया। उस वृक्ष के रस का पान पोउरुषास्प ने किया। उसी समय एक दिव्य ज्योति उसकी पत्नी के उदर मे प्रविष्ट हुआ, जिसके फलस्वरूप जरथुश्त्र का जन्म हुआ।[4] उसके पिता का वर्णन अवेस्ता एव पह्लवी साहित्य में असकृद् स्थानो पर हुआ है। उसके पितामह का नाम 'हएवतास्प' था। उसके अतिरिक्त उसके 4 भाई थे जिनका नाम रतुश्तर, रङ्घुश्तर, नओतर एव निवेलिश था। परम्परानुसार उसकी तीन पत्नियां थीं (बुन्देहिश्न 32/5-7)। प्रथम पत्नी से उसकी चार सन्तानो ने जन्म लिया। उनमे एक पुत्र (इशतवाश्त्र) था तथा अन्य तीन पुत्रिया (फ्रेनि, श्रिती, एव पोउरुचिस्ता) थी। इशतवाश्त्र द्वितीय पत्नी के बच्चो का सरक्षक था।

उसकी सबसे छोटी कन्या का विवाह विश्तास्प के वजीर जामास्प से हुआ। जामास्प के ही कुल के फ्रशओश्त्र की पुत्री ह्वोवा से जरथुश्त्र ने पुनः विवाह किया उसकी कोई भौतिक सतान तो नहीं पर भविष्य मे उसके उख्श्यत् अरत, उख्श्यत् नमह् तथा सओश्यन्त नाम की अनन्त सन्तानें उत्पन्न होगी।

---

1 शाक द्वीपीय ब्राह्मण-विमर्श, पृष्ठ 60-61, डॉ राम नारायण मिश्र

2 Zoroaster the Prophet of Ancient Iran Page 10-11

3 वेदावित्तप्रकाशिता, पृ 5

4 प्राचीन विश्व की सभ्यताए, पृ 441, डॉ० आर एन पाण्डेय

अउर्वत्-नर तथा खुर्शेद् चिह्न दो चखर (चा-ूर) दासी के पुत्र बताये गये है। बुन्देहिश्न 32/5-6 के अनुसार उसकी रक्षिता से भी एक पुत्र उत्पन्न हुआ। एक अन्य कथा के अनुसार उख्श्यत् अरत् एव उख्श्यत् नमह् की माताओ क्रमशः फ्रेधि एव वड्हुफ्रेधि ने कासव झील मे सरक्षित जरथुश्त्र के वीर्य को स्नान के समय धारण कर समयानुसार एक एक पुत्रो को जन्म दिया। यह कथा उस वैदिक कथा से अद्भुत साम्य रखती है जिसके अनुसार मैत्रावरुण के क्षरित वीर्य को विश्वेदेवो ने पुष्कर मे रखा, जिसे उर्वशी ने धारण कर वशिष्ठ को जन्म दिया।[1]

जरथुश्त्र के शिक्षक का नाम बुरजिन कुरुॅस था।[2] बीस वर्ष की अवस्था मे वह प्रव्रजित हुआ एव 30 वर्ष की अवस्था मे उसे परमात्मा का साक्षात्कार एव ज्ञान प्राप्त हुआ। इसी अवस्था कार्यक्षेत्र मे प्रविष्ट हुआ।

अविच्छिन्न स्वप्नवार्ताओ के माध्यम से जरथुश्त्र का धार्मिक वर्ष प्रारम्भ हुआ। प्रथमर्वाता अहुरमज्दा से हुई तत्पश्चात् द्वितीय, तृतीय, चतुर्थ, पञ्चम, षष्ठ एव सप्तम वार्ता क्रमशः वोहुमनह्, अष वहिश्त, ख्शथ्रवइर्य, स्पॅन्ता आरमइति, हउर्वतात् एव अमरतात से हुई है। Selection of Zat Sparam मे सविस्तर इन वार्ताओं का वर्णन उपलब्ध होता है।[3]

उपरि निर्दिष्ट वार्ताओ के उपरान्त भी जरथुश्त्र का जनमानस पर तनिक भी प्रभाव नही हुआ। जनता मे उसका सिद्धान्त ग्राह्य नही हुआ। दश वर्षो के अन्तराल मे केवल कवि 'विश्तास्प' ने ही जरथुश्त्रोपदिष्ट धर्म को ग्रहण किया। तत्पश्चात् दो वर्षो मे वह कवि विश्तास्प के विचार-परिवर्तन में सफल रहा। विश्तास्प के विचार परिवर्तन से उसका कार्य अत्यन्त सुकर हो गया। उसके सरक्षण मे ज़रथुश्त्र-प्रवर्तित धर्म ईरान का महत्वपूर्ण धर्म बन गया। खुर्तक् अवेस्ता के अनुसार विश्तास्प के हृदय-परिवर्तन के लिए एव स्वविचारो से उसे परास्त करने के लिए ज़रथुश्त्र ने अर्द्वी सूर् अनाहिता से प्रार्थना की थी।

उपर्युक्त मे सत्यासत्यविवेक वाह्यप्रमाणाभाव से अत्यन्त दुष्कर है। फिर यह तो सहज ही बात है कि किसी व्यक्ति की उच्छिखता को लोग आसानी से मान्यता नही देते, इसलिए

---

1 उतासि मैत्रावरुणोर्वसिष्ठोर्वश्या ब्रह्मन्मनसोऽधिजात॰ ।

द्रप्स स्कन्न ब्रह्मणा दैव्येन विश्वेदेवा. पुष्करे त्वाददन्त।। ऋ ० 7 33 11

2 Zoroaster the prophet of ancient iran page - 30

3 Zoroaster the prophet of ancient iran, page - 50

कम से कम जरथुश्त्र की सघर्षकथा मे तो कोई अतिशयोक्ति हो ही नही सकती।

वीश्तास्प जरथुश्त्र मत का सरक्षक बन गया। उसका नाम अनेकत्र अवेस्ता, पह्लवी ग्रन्थो तथा 'फिरदौसी' की शाहनामा मे आया है। उसके पिता का नाम 'अर्वतास्प' था। उसकी धर्मपत्नी हुतओसा (सुतोषा) जरथुश्त्र मत मे अगाध श्रद्धालु एव इस मत की सरक्षिका थी जइरिवइरि उसका भाई था। उसकी तीन सततियो मे दो पुत्र थे एव एक पुत्री। उसके पुत्रो मे एक का नाम 'स्पन्तओदाता' एव दूसरे का पेशोतनु था। उसकी पुत्री का नाम हुमा था, जो अपने अद्‌भुत सौन्दर्य के लिए विख्यात थी।[1] विश्तास्प के सहयोग से ईरान मे जस्थुरत्र के धर्म का दुतगति से प्रचार हुआ। उसका धर्म 'राष्ट्रिय धर्म' बनने की दिशा में अग्रसर हो गया। जरथुश्त्र को अपने जीवन काल मे ही प्रभूत ख्याति प्राप्त हो गयी 'सूतो अइर्‌येने वएजहि'[2] (आर्यायण व्यचस् मे प्रसिद्ध) से यह स्पष्ट हो जाती है। उसने पुरातन धर्म का विरोध किया एव कर्मकाण्ड मे पशुहिसा का पूर्ण निराकरण किया। अवेस्ता मे उसे 'अहुरत्कअेशो' (असुरचिकेता) विदअेव (स-विदेव) अर्थात् देवविरोधी, अओजिश्त (स ओजिष्ठ) सर्वाधि क ओजस्वी 'तन्चिश्त' (स तञ्चिष्ठ) कठोरतम, थ्वक्शिश्त (स त्वक्षिष्ठ) सबसे बडा निर्माता, आसिश्त (सं आशिष्ठ) सबसे तेज ,अस्‌वरथ्रघ्नतम (स अतिवृत्रहन्तम) अरिघातकतम कहा गया है।[3] उसके अन्य प्रमुख शिष्य मइध्योमाङ्‌ह् उसका चचेरा भाई अरास्ति, उसका जामाता एव विस्तास्प का वजीर जामास्प, जामास्प का भाई फ्रशओश्त्र आदि थे।

यह भी ध्यातव्य है कि प्राचीन ईरान मे 100 वर्षो के अन्तराल मे ही विश्तास्प सञ्ज्ञक दो व्यक्तियो की सत्ता थी। हखामनीष् शासक दारयउश् (धारयद्‌वसु) के पिता एव अर्शाम् के पुत्र विश्तास्प[4] कविवशीय विश्तास्प से सर्वथा भिन्न थे।

ईसा पूर्व 554 मे सतहत्तर वर्ष की अवस्था मे तूर ई ब्रातर्‌वख्य ने उसको मार डाला। ऐसी भी धारणा है कि आकाशीय विद्युत् से उसकी मृत्‌यु हुई।[5] भारत में जिस प्रकार बुद्ध एव

---

1 Zoroaster the prophet of Ancient iran Page - 70 - 71

2 अवेस्ता, हओम यश्त्, यस्न 9 14

3 अवेस्ता, हओम यश्त्, यस्न 9 15

4 अदम् दारयउश् ख्शायथिय वज्रक विश्तआस्पह्या पुस्स अर्‌शामह्या नपा हखामनीषिय। प्रा फा शिलालेख, धारयद्‌वसु, बहिस्तन (प्रकोष्ठ - 1)

5 प्राचीन विश्व की सभ्यता पृ 442

महावीर ने पुरातन मान्यताओ के विरोध मे अपने मत का प्रवर्तन किया उसी प्रकार ईरान मे जरथुश्त्र ने रूढिवादी (यज्ञीय) पशुहिसा कर्मकाण्ड एव दएव-पूजा के विरूद्ध एक सरल, भावप्रधान, कर्मकाण्ड के आडम्बरयुक्त विस्तार से विहीन धर्म का प्रतिपादन किया। परम्परागत धर्म के विरुद्ध होने के कारण पारम्परिक धर्मानुयायियो द्वारा इसका सबल प्रतिरोध किया गया। यदि अति सक्षेप मे कहा जाय तो आचरण की शुद्धता एव सर्वोच्च अहुरमज्दा मे अनन्य श्रद्धा उसके धर्म के मुख्य सिद्धान्त है।

अवेस्तीय धर्म आसुर धर्म है। ऋग्वेद मे असुर शब्द असकृद् देव अर्थ मे प्रयुक्त है[1] किन्तु वही दुरात्मा के अर्थ मे भी अनेकशः ऋगादि वेदो मे प्रयुक्त है।[2] वैदिक देव की तरह ही दएव पद अवेस्ता के गाथा भाग मे अच्छे अर्थ मे प्रयुक्त है[3] किन्तु गाथातिरिक्त भागो मे इसका अर्थ दुरात्मा[4] है। अहुरमज्दा ससार का रचयिता एवं पालयिता है। एतदधीन अथवा एतत्सहचर कई सदात्माये है जिनको ॲमषा स्पॅन्ता (अमृताः श्वेनाः) कहा जाता है। इनकी सख्या छः है, जिनका परिचय अति संक्षेप मे प्रस्तुत किया जा रहा है-

1 वोहुमनह्- (स वसुमनः) इसका अर्थ अच्छामन यद्वा शुद्ध मन है। ज्ञान, विवेक तथा स्मृतिप्राप्त्यर्थ उसका स्तवन हुआ है।

2 अष वहिश्त- (स ऋत वसिष्ठ) ऋत का आग्ल रूपान्तर 'Right' एव वसिष्ठ का 'Best' है, अतः इसका अर्थ सर्वोत्तम नियम अथवा नैतिक व्यवस्था है। यह सर्वोत्तमजगन्नियामिका शक्ति का नाम है।

3 क्षथ्रवइर्य- (स क्षत्रवर्य) इसका अर्थ अभीष्ट शासन है। अतः यह उत्तर शासन का यजत है।

4 अरम् मइति- (सं. अरमति, अरमतिः) वेद मे इसका समरूप 'अरमति' अनेकशः प्रयुक्त है। यद्यपि इसका अर्थ विरामहीन है। किन्तु अविरतभक्त्यर्थ भी इसका प्रयोग वेद मे उपलब्ध है-

---

1 वि सुपर्णो अन्तरिक्षाण्यख्यद् गभीरवेपा असुर. सुनीथ ॥ ऋ 1 35 7

2 अनायुधासो असुरा अदेवाश्चक्रेण ता अप वप ऋजीषिन्। ऋ 8 96 9

3 आअत् यूश् ता फ्रमीमथा। या मश्या अचिश्ता दन्तो। वक्षन्ते जुश्ता अवेस्ता, यस्न 32 4

4 तूम् जमॅर् गूजो आकॅरॅनवो विस्पे दअेव जरथुश्त्र। अवेस्ता हओम यश्त्, यस्न 9 15

समु वो यज्ञ महयन् नमोभिः प्र होता मन्दो रिरिचे उपाके।

यजस्व सु पुर्वनीक देवान् आ यज्ञिया अरमति ववृत्या।।[1]

उद्घृयमाण ऋचा मे प्रयुक्त अरमति शब्द का अर्थ 'अलमतिः पर्याप्तस्तुतिः' सायण ने किया है-

अरमतिरनर्वणो विश्वो देवस्य मनसा।[2]

(5) हउर्वतात् एव (6) अमॅरॅतात्-हउर्वतात् (स सर्वतात्) एव अमरतात् (स अमरतात्) दोनो सम्बद्ध यजत है। केवल गाथा मे अमॅरॅतात् का अकेले भी उल्लेख है अन्यथा अवेस्ता मे सर्वत्र ये युगल रूप मे ही आते है। हउर्वतात् सम्पूर्णता एव पोषकता का यजत है एव अमरतात् अमरत्व का। वैदिक जन भी अमरत्वकामी था-

अपाम सोमममृता अभूमागन्म ज्योतिरविदाम देवान्। ऋ 8/48/3

इन छः गुणो से युक्त अहुरमज्दा की कल्पना षाड्गुण्योपेत भगवान विष्णु से समानता रखती है।

अहुरमज्दा की सर्वोच्चता स्वीकार करते हुए भी अवेस्तीय जनो का अनेक देवताओ मे विश्वास था। अतः हम इनके देवतासम्बन्धी विचार को बहुदेववादी एकदेववाद कह सकते है। पूर्ववर्णित अहुरमज़्दा एव उनके गुणधिदेवताओ के अतिरिक्त भी अनेक देवो-देवियो की स्तुति अवेस्ता मे उपलब्ध है।

आतर्- यह अग्नि का वाचक है। इसका वैदिक प्रतिरूप 'अथर्' है। 'अथर्व' इससे समानता वाला पद है। ऋग्वेद में एक स्थान पर अथर्यु शब्द का प्रयोग हुआ है "दूरेदृश गृहपतिमथर्युम्" (ऋ०7/1/1)। अवेस्ता मे इसके पॉच रूपो का वर्णन है। वेद मे भी पञ्चाग्नि का वर्णन है।

मिथ्र- (स मित्र) यह प्रकाश एव मैत्री का अधिदेव है। वेद मे वरुण के युग्म मे इसकी स्तुति प्रयुक्त है। अवेस्ता मे एक समग्र यशत् इस देव के लिए निवेदित है। ऋतक्षयार्ष द्वितीय एवं तृतीय नाम के उत्तर कालीन हखामनीषी शासकों ने अपने अभिलेखों मे मित्र का

---

1 ऋ - 7 42 3

2 ऋ - 8 31 12

स्तवन किया है।[1] रोमन शासन काल मे मित्र-पूजा का ईरान से बाहर प्रसार हुआ।[2]

रश्नु- (स ऋजु) यह स ऋज् (सरल होना) से बना है। इसी धातु से स ऋजु एव अग्रेजी Right पद निष्पन्न है। यह चोरो को दण्ड देने वाला है।[3] समग्र द्वादश यश्त् इससे पूर्णतः सम्बद्ध है।

दएना- (स धेना) यह धर्म का वाचक शब्द है। अनेक यजतो के साथ इसका उल्लेख है। वेद मे धेना शब्द का प्रयोग स्तुति के अर्थ मे हुआ है-

वायो तव पपृच्चती धेना जिगाति दाशुषे।

उरूची सोमतीतये।। (ऋ० 1/2/3)

आधुनिक फारसी मे दीन् शब्द धर्म के अर्थ मे प्रसिद्ध है। समग्र सोलहवा यश्त् इस देवी की स्तुति मे समर्पित है।

फ्रवषि- (सं प्रवर्ति) प्रत्येक शरीर मे एक फ्रवषि होती है जिसका उदय जीवात्मा के जीवग्रहण से पूर्व हो जाता है। यह सूक्ष्म शरीर अथवा साक्षिचैतन्य के सदृश है। डॉ हरि शङ्कर त्रिपाठी के मतानुसार यह (वैदिक) प्रवर के समानान्तर है।[4] फ्रवषिया आसन्नप्रसवा स्त्रियो को सुष्ठुप्रसवा बनाकर उन्हे पुत्र सम्पन्न करती है।[5] इनकी शक्ति सूर्य, चन्द्रमा एव तारो को उनके पथ पर सचालित करती है।[6] कहा जाता है कि जरथुश्त्र की फ्रवषि उसके जन्म के पॉच सहस्र नौ सौ सतहत्तर वर्ष पूर्व ही उद्भूत हो गयी थी।[7] सम्पूर्ण त्रयोदश यश्त् इसको समर्पित है।

---

1 अनहता उता मिथ्र माम् पातुव् , प्रा फा शिलालेख, ऋतक्षत्र द्वितीय, हमदन्।

2 वेदावित्तप्रकाशिका, प्रो क्षेत्रेश चन्द्र चट्टोपाध्ययाय, पृ 12

3 रष्वो अरथमत् बइरिश्त् रष्वो तायूम् निजघ्निस्त।। अवेस्ता, यश्त् 12 7

4 अवेस्ता कालीन ईरान, पृष्ठ 186-187

5 ओड्हॉम् रय ख्वरनड्हच, हाइरिषीश् पुथ्र वॅरॅन्वइन्ति, ओड्हॉम् रय ख्वरॅनड्हच, हुजामितो जीजनन्ति, ओड्हॉम् रय ख्वरॅनड्हच, यत् बवइन्ति हचत् पुथ्रो (यश्त् 13 15)

6 हरॅअव पथ अअेइति माो अव पथ अअेइति स्तारो अब पथ येइन्ति। यश्त्-13 16

7 वेदावित्तप्रकाशिता, प्रो क्षे च चट्टोपाध्याय पृष्ठ 12-13

द्वास्पा- (स ध्रवाश्वा) इसका अर्थ स्थिरपशुवाली है। यह पशुवर्धयित्री, अश्वपालयित्री देवी है। द्वोफ्षुस (ध्रुवपशु) युख्त अस्प (युक्ताश्व) इत्यादि विशेषणो इस बात की पुष्टि होती है। वेद मे पूषा को पशु रक्षक कहा गया है।[1] सकल नवम यश्त् मे इसकी महिमा का गान है।

वॅरॅथ्रघ्न- यह विजय का अधिदेव है। वेद मे वृत्र का अनेक स्थलो पर शत्रु के अर्थ मे प्रयोग मिलता है-

वृत्राण्यन्यो समिथेषु जिघ्नते व्रतान्यन्यो अभिरक्षते सदा (ऋ० 7/83/9)

एव

वृत्राण्यन्यो अप्रतीनि हन्ति (ऋ० 7/85/3)

वेद मे इन्द्र को वृत्रहा कहा गया है। निरुक्त[2] एव वृहद्देवता मे इन्द्र के कर्मो मे वृत्रवध प्रमुख है। अवेस्ता मे भी वॅरॅथ्र शुत्र का ही वाचक है। वृत्र > वॅरॅथ्र से ही अग्रेजी Weather शब्द निष्पन्न है। वस्तुतः वृत्र खराब मौसम का प्रतीक है जिसमे उपलवृष्टि, अतिशैत्यादि घटनाये प्रमुख है। अवेस्ता के चतुर्दश यश्त् मे इसकी पुरुरूपता उल्लिखित है।[3] वेद मे भी इन्द्र की पुरुरूपता के सकेत मिलते है-

रूपं रूपं प्रतिरूपो बभूव तदस्य रूप प्रतिचक्षणाय।

इन्द्रो मायाभिः पुरुरूप ईयते युक्ता ह्यस्य हरयः शता दश। (ऋ० 6/47/18)

जरथुश्त्र भी विजयकामनया वॅरॅथ्रघ्न के समक्ष प्रार्थी था।

ख्वरनह्- (स स्वरणम् अथवा स्वर्णस्) यह स्वृ अवेस्ता ख्वृ धातु से निष्पन्न है। स्वृ >स्वन् > Shine का अर्थ 'चमकना' है। सूर्य एव चन्द्रमा की किरणों से समीकरण से इसकी कान्तिमत्ता स्पष्ट है (यश्न् 7/1, यश्त् 7/2)। वस्तुतः यह राजत्व का प्रतीत है। ऋग्वेद में दीप्त्यर्थक स्वरण शब्द का प्रयोग हुआ है-" सोमान स्वरण कृणुहि" (ऋ० 1/18/1) सम्पूर्ण 21 वां यश्त् ख्वरनह् को समर्पित है।

---

1 पूषा गा अन्वेतु न.। पूषा रक्षत्वर्वतः। पूषा वाज सनोतु नः।। ऋ 6 54 5

2 अथास्य कर्म रसानुप्रदान वृत्रवध । निरुक्त 1 10

3 The Foundation of the Iranian Religions, Prof Louis H Gray Page 117-119

वयु- यह वैदिक वायु का प्रतिरूप हैं पन्द्रहवे यश्त् मे वयु नाम से इसकी स्तुति हुई है। यश्त् के अन्तिम मन्त्र मे इसका नाम राम ख्वास्त्र[1] > राम सुवास्त्र है जिसका अर्थ सुखप्रद निवास है। सद्वृत्ति एव असद्वृत्ति उभयविध जनो द्वारा इस की पूजा की गयी (15/2 से 27)

अषि वड्.उही- (स ऋति वस्वी) वेद मे निर्ऋति दुःख, कष्ट, निर्धनता का वाचक है-स मातुर्योना परिवीतो अन्तर्बहुप्रजा निर्ऋतिमा विवेश। ऋ० 1 164 32 ठीक इसके विपरीत अवेस्तीयात्ऋति सुख एव समृद्धि की अधिष्ठात्री यजता है। पौराणिक लक्ष्मी एतत्साम्यसम्भृता देवी है। इसकी कृपाकटाक्ष का भाजन मानव समृद्धियुक्त हो जाता है-

ते नरो क्षथ्र क्षयेन्ते अश् बओउर्व

निधातो पितु हुबओइधि

यह्म्य स्तरॅतस्च गातुश्

अन्योस्च बॅरॅख्धो अवरॅतो

योइ हचहि अषिश् वङु हि

उश्त बा यिम हचहि

उत माम् उपङ् हचहि

वोउरसरॅध अमवइति।। अषि 7।।

अर्थात् वे मनुष्य शासन करते है, सञ्चितखाद्य एव सुगन्ध से युक्त होते है। जिनके घर मे पर्यङ्क स्तृत होते है, अन्य समृद्धियॉ भी चली आती है, हे ऋति वस्वि। जिससे तुम सम्पृक्त होती हो। उसकी कामना सिद्ध हो जाती है, जिससे तुम मिलती हो। हे प्रभूत गण वाली शक्तिमति। तुम मुझसे भी सम्पृक्त होती हो।

ह्वर्- यह वैदिक स्वः यद्वा सूर्य का समरूप है। यह पद स्वृ कान्तौ से व्युत्पन्न है इसका आग्ल समरूप Sun है। यह पृथ्वी को पवित्र करने वाला अहुर का नेत्ररूप है। षष्ठ यश्त् साकल्येन ह्वर् की स्तुति मे समर्पित है। यह मास के एकादश दिवस कर स्वामी है।

---

1 यस्नमच वह्ममूच अओजस्च जवस्च आफ्रीनामि। रामनो ख्वास्त्रहे वयओश् उपरो कइरयेहे तरधातो अन्याइश् दामॉन् अअेत् ते वयो यत् ते अस्ति स्पॅन्तो मइन्यओम्।

तिश्र्य- यह एक तारा यद्वा नक्षत्र है।[1] इसका सस्कृत समरूप तिष्य है। अष्टम यश्त् सम्पूर्णतया इसकी स्तुति मे प्रयुक्त है। इस नक्षत्र के उदित होने पर ईरान मे वृष्टि का प्रारम्भ हुआ था। यह अपओष (अवृष्टि) को जीतने वाला है (यश्त 8/8-39) यह तीन दिन, तीन रात में अनओष को पराजित करता है। (यश्त् 8/12-21) इसका स्तवन अहुर, मित्र वॅरॅथ्रघ्नादि अनेक यजतो के साथ हुआ है। अपओष के साथ इसका युद्ध, इन्द्र एव वारिरोध क वृत्र की सघर्ष कथा का स्मरण कराती है-

दासपत्नीरहिगोपा अतिष्ठन्

निरुद्धा आपः पणिनेव गावः।

अपा बिलमपिहित यदासीत्

वृत्र जघन्वाँ अप तद्ववार ।। (ऋ० 1/32/11)

हओम- (स सोम) सस्कृत 'सु' अवेस्ता हु धातु से हओम, स सोम शब्द की निष्पत्ति हुई है। सु धातु का अर्थ अभिषव करना, निचोडना है। नवम, दशम, ग्यारहवा यस्न सोमोपासना से सम्बद्ध है। ऋग्वेद के नवम मण्डल मे सोम से सम्बद्ध सूक्तो का सकलन है हओम का उत्पत्तिस्थान हरइती वरजइती (अलबुर्ज) पर्वत स्थान है।[2] यह अषव (स-ऋतावा ऋत सम्पन्न) अपओष (मृत्यु को हटाने वाला) वड्हु (वसु) अच्छा, बएषज्य (भेषज्य) ओषधिगुणसम्पन्न, ह्वरश् (सुकर्मा) आदि अनेकानेक विशेषणो से मण्डित है। अनेकानेक कामनओ की प्राप्ति हेतु इसकी स्तुति की जाती है। यह कन्याओ के लिए वरप्रद कहा गया है-

हओमो तोस्चित् यो कइनीनो

ओड्हइरे दॅरॅधॅम् अघ्वो

हइथीम् राथॅम् च बक्षइति

मोषु जइध्यम्नो हुखतुश् (हओम-23)

---

1 The foundation of the iranian religion page 115

2 अउर्वन्तम् थ्वा दामिधातम बघो निदथत् ह्वापो हरइथ्यो पइति बरजयो। हओम यश्त्, यस्न 10 10

वे जो दीर्घसमय तक अविवाहित कन्याये है उन्हे मॉगने पर शोभनबुद्धिसम्पन्न सोम शीघ्र ही प्रियपति प्रदान करता है। वेद के अपाला-वृत्तान्त मे भी इस बात का सकेत है कि सोम कन्याओ को पति से सयुक्त करता है।[1] अन्तर इतना है कि यहॉ सोमार्पण से प्रसन्न होकर इन्द्र अपाला को त्वग्दोष से मुक्त कर उसे पतियोग्या बनाता है। उपरिवर्णित यजतो के अतिरिक्त भी अवेस्ता मे अनेक यजतो से सम्बन्ध छिटपुट उल्लेख प्राप्त होता है-

अकरन ज्रवनकरन (स कर्ण) से हि आधुनिक फारसी का किनारा पद उद्‌भूत है 'अकरन' का अर्थ है निस्सीम। 'ज्रवन' शब्द कालवाची है। 'ज्रवन' से ही आधुनिक फारसी जमाना, June अग्रेजी, जून-हिन्दी (बेला) पद विकसित है अत: 'अकरन ज्रवन' का अर्थ है-निस्सीम काल। यह पृथ्वी पर आहूत है (वे 19/73) यह चिन्वत् पॅरॅतु मार्ग का निर्माता है।

सवह्- (स शवस्) यह लाभ एव सुख का अधिदेव है तथा चिस्ति, अषि, अरास्ति आदि यजतो से सम्बद्ध है।

अपांनपात्- यह जल से सम्बद्ध यजत है एव इसका सम्बन्ध उर्वरा से भी है। वेद मे भी अपा नपात् जल से सम्बद्ध है।

चिस्त- यह शारीरिक शक्ति, दूरदृष्टि को प्रदान करने वाली हे इसका सस्कृत रूपान्तर चित् है। यह दएना का नामान्तर अथवा तत्सम्बद्ध है।

इसके अतिरिक्त दामोइश् सतवएस (शतविश्) अस्मान (स. अश्मन्) जॅम् (सस्कृत ज्माा) अनड रो रओचङ्ह (सं अजस्र रोच:) अइर्यमन (वेद अर्यमा) उभयत्र विवाह से सम्बद्ध। परेन्दि (स पुरन्धि) उषङ्ह (स उषस्) आदि अनेक यजतो का सश्रद्ध नामोल्लेख अवेस्ता साहित्य मे असकृद् उपलब्ध है।

अवेस्तीय धर्म द्वैतवादी है। वह द्वैत है सत् एव असत् का शाश्वत सघर्ष। अङ्.रोमइन्यु असत् एव पाप की शक्ति का प्रतीक है और स्पॅन्ता मइन्यु सत् एव पुण्य की शक्ति का प्रतीक है।[2] स्पन्ता मइन्यु ने जो शुभ कार्य किया है अङ्‌रोमइन्यु उसका नाश करता चाहता

---

1 ऋग्वेद- 8 11 (सम्पूर्ण सूक्त) यद्यपि व्याख्याकारो का इस विषय पर एकमत्य नही है।

2 अयाो मनिवाो वरता। यॅ द्रॅग्वाो अचिशता वॅरॅज्यो। अषम् मइन्युश् स्पॅनिश्तो। अवेस्ता, यस्न्, हा, 30 5

है। पर विजय अन्ततः स्पॅन्ता मइन्यु की ही होती है और असत् शक्तिया पराभूत होती है। अतः प्राणिमात्र का यह कर्तव्य है अङ्रोमइन्यु के प्रलोभन से बचना चाहिए। वेदो और पुराण साहित्य मे इसी प्रकार देवो एव असुरो की सग्राम-कथा बहुशः वर्णित है। यथा अहुरमज्दा ष्प्ट् अथवा सप्त सहचरो से युक्त है, उसी प्रकार अङ्रोमइन्यु भी सात सहचरो से युक्त है।

अक् मनह- (स अधमन) यह वोहु मनह् का विरोधी है। किन्तु अन्त मे यह वोहु मनह् द्वारा पराजित होता है।

इन्दर- (स इन्द्र) वैदिक देवशास्त्र मे इन्द्र महनीय देवता है। ऋग्वेद के सर्वाधिक सूक्त (250) इस देव को समर्पित है। अवेस्ता मे यह दुरात्मा है। अवेस्ता मे इसका नाम दो स्थानो पर आया है। (वेन्दिदाद 10/9, 19/13)। वेदो एव पुराणो मे भी इसके निम्न कर्म अनेकत्र उल्लिखित है। यथा उत्पन्न होकर अपने पिता को सताया।[1] उषा के रथ को तोडना[2], अहल्याजारत्व, स्वजनन्युदरस्थ मरुद्गर्भ को छिन्न-भिन्न करना, महाराज सगर के यज्ञीय अश्व को कपिल ऋषि के आश्रम मे छोडना,[3] छल द्वारा मान्धाता का वध करवाना आदि।[4]

सउरु- (स शर्वः) शर्व वेद मे भी सहारकर्त्ता है। क्षथ्रवइर्य के विरोधी अवेस्तीय सउरु का अङ्रोमइन्यु के सहायको के मध्य परिगमन का यही कारण है।

नाओङ्हइथ्य- (स नासत्यौ) वेद मे नासत्यौ अश्विनो के लिए प्रयुक्त है, जिसका अर्थ है 'न असत्यौ' अर्थात् सत्य एव ''नासत्यौ'' नासिका से उत्पन्न किन्तु अवेस्ता मे न सत्यौ (असत्य) इस प्रकार का अर्थ ग्रहण किया गया।

जइरिच्- (स जरस्) यह भी अङ्रमइन्यु का सहचर एव वार्धक्य का पर्याय है। वेद मे भी वृद्धावस्था से मुक्त होने वाले च्यवन की कथा है जिसे 'अश्विनौ' ने जरामुक्त किया था। वस्तुतः जरावस्था से बढकर मनुष्य का कोई शत्रु नही है-

जरा सम नास्ति शरीरिणा रिपुः (बुद्धचरित) जइरिच् का एक अन्य दुरात्मा तउर्वि से युग्म है। वेन्दि 10/10, 19/43।

---

1 कस्ते देवो अधि मार्डीक आसीद् यत्प्राक्षिणाः पितर पादगृह्य। ऋ 4 18 12

2 अवाहन्निन्द्र उषसो यथानः। ऋ 10 73 6

3 श्रीमद्भागवत 9 8 8-12

4 रामायण, उत्तरकाण्ड- 67 4-22

अएष्म- (स ऐष्म:) यह इच्छा जनित क्रोध है। अएष्म बुराइयो का जनक है (यस्न 30/4) गीता मे भी क्रोध को काम जनित कहा गया है **कामात्क्रोधोभिजायते**।[1] आगे गीता मे कहा गया है कि क्रोध से सम्मोह होता है, सम्मोह से स्मृति-विभ्रम, स्मृति-विभ्रम से बुद्धिनाश एव बुद्धिनाश से व्यक्ति नष्ट हो जाता है-

क्रोधाद्भवति सम्मोह. सम्मोहात्स्मृतिविभ्रम:।

स्मृतिभ्रशाद्बुद्धिनाशो बुद्धिनाशात्प्रणश्यति।।[2]

अन्य बहुत से दएवो का उल्लेख अवेस्तीय साहित्य मे प्राप्त होता है।-यथा

अज़ीदहाक- (स अहि: दासक:) यह क्रूरता, कामपारायणता, नीचता का मूर्तरूप था। वेद मे वृत्र अहिरूप है। यह त्रिशिरा, षडक्ष है। इसके समानलक्षण युक्त विश्वरूप त्वष्ट्रा का वर्णन वेद मे है। थ्रएतओन ने इसका वध किया (द्रष्टव्य-ऐतिहासिक टिप्पणिया)।

जइनि एवं जहिका- यह कामपरायणा, ऋतप्रतिकूल आचरण करने वाली दुश्चरित्रा, अपवित्रा वेश्या की प्रतीक है। अड्रमइन्यु के एक चुम्बन से इसके पापकर्मसम्पादनसामर्थ्य मे अद्भुत वृद्धि हो गयी थी (बुन्दे 30/10) यह बाहर से सर्वाड्गसुन्दरी, रूपयौवनसम्पन्ना किन्तु अन्त:कालुष्य से युक्त है। इसने जरथुश्त्र को भी भष्ट करने का प्रयास किया था। स्पॅन्तामइन्यु की सृष्टि को नष्ट कर देने का इसका सड्कल्प था।

पइरिका- यह अड्रमइन्यु की सेना का अड्ग, दिव्यजल रोकने वाली है। दिव्य जल के अवरोधन के कारण अकाल (दुशियार) लाना एव कृषि को नष्ट करना इसका प्रधान कर्म है। यह यातुमइती-यातुमती, जादूगरनी हैं नइर्यसंघ के अनुसार यह महाराक्षसी है। अवेस्ता एव परवर्ती साहित्य मे कई पइरिकाओ के नाम एव कामो का उल्लेख है। समग्र पइरिकाओ के आका (प्रमुख) का नाम अख़्य है।

इसके अलावा भी अपओष (अवृष्टि) नसु, तरोमइति (अहड्.कार वृत्ति) द्रुज् (द्रोह, धोखा) अरस्क, जउर्वन आदि अनेक दुरात्माओ का वर्णन भी उपलब्ध होता है।

दार्शनिक विचार- अहुरमज्दा की सर्वोच्चता एव अड्रमहन्यु की तिरस्कृति के अतिरिक्त भी कुछ ऐसे तत्वो का विवरण मिलता है जिससे हम अवेस्तीय दर्शन की रूपरेखा

---

1 गीता 2 62

2 गीता 2 63

तैयार कर सकते है।

कर्म सिद्धान्त- अवेस्तीय जन यावज्जीव कर्मविश्वासी है। अवेस्तीय कर्म त्रिधा विभक्त है-हुमत (सुमत) हूख्त (सूक्त) ह्वर्शत (स्वृष्ट) ये तीनो कर्म मनोवाक्कायसम्पाद्य है। अच्छा सोचना, अच्छा बोलना एवं अच्छा करना ही आर्यत्व है। गीता मे भी यही अभिप्राय अभिहित है-

कायेन मनसा बुद्धया केवलैरिन्द्रियैरपि।

योगिनः कर्म कुर्वन्ति सङ्गं त्यक्त्वात्मशुद्धये।।[1]

अहुरमज्दा सुकर्मा की हर प्रकार से सहायता करता है। सोम का कथन है-

हुमतहे अह्मि दुश्मतहे नो इत् अह्मि हूक्तहे अह्मि दुजूख़्तहे नो इत अह्मि।

हरश्तहे अह्मि दुज़्वर्श्तहे नो इत अह्मि। (हओम यस्न 10/16)

''मै सुविचारो वाले का हूँ दुर्विचार वाले का नही हूँ। शोभनवचन वाले का हूँ दुर्वचन बोलने वाले का नही हूँ। सुकर्म करने वाले का हूँ दुष्कर्म करने वाले का नही हूँ।''

कर्मसिद्धान्त के अतिरिक्त कर्मफल का सिद्धान्त भी अवेस्ता मे प्रतिपादित है-ह्यत् दो श्यओथ्ना मिज्दवान् याचा उख्धा अकॅम् अकाइ वङु हिम् अशिम् वङ्हवे थ्वा हुरना दामोइश् उर्वएसे अपॅमे (यस्न-43 5)

''हे असुर सर्ग के अन्त मे तुम अपने सत्य निर्णय से ऋतावा को उसके शुभकर्म के लिए वरदान प्रदान करोगे, पापियों को कुकर्मो का फल दोगे, प्रत्येक को उसके विचार एव कर्म के अनुसार फल दोगे।''

यह वाक्य- ''कर्म कः कृतमत्र न भुङ्क्ते (नैषध) सिद्धान्त को स्पष्ट करता है। फिर सावधानी लाख करने पर भी कही न कही मानवत्वेन स्खलति हो ही जाती है, उसके लिए अवेस्ता मे प्रायश्चित्त का निधान है। भारतीय धर्म दर्शन मे भी प्रायश्चित्त एव पश्चात्ताप का विधान है।''

---

1 गीता 5 11

मन्वादि स्मृतियो मे वर्णित चान्द्रायणादि[1] व्रत प्रायश्चित्त[2] रूप ही है। अवेस्ता मे प्रायश्चित्त का बोधक पद पइतित (पतेत) है। पइतित शब्द पइति (प्रति) पूर्वक इ धातु से निष्पन्न है जिसका अर्थ है 'पीछे की ओर जाना'। इससे व्यक्ति अपने पूर्वकृत दुष्कर्मो के लिए पश्चात्ताप करता है, ईश्वर से प्रार्थना करता है क्षमा माँगता है एव दुष्कर्मों का सत्कर्मो से शमन करता है। पइतित सिद्धान्त बौद्ध धर्म के प्रतीत्य समुत्पाद से मिलता-जुलता है। दु:ख के कारणो की छानबीन करते हुए महात्मा बुद्ध ने द्वादश कारण-परम्परा का पता लगाया था। उसमे सबसे मूल मे अविद्या है, इसी कारण परम्परा शुरू होती है और जन्म का कारण बनती है और जन्म ही दु:ख का कारण है। अविद्या के उच्छेदन से कारण का सर्वथा उच्छेदन हो जाता है।

अवेस्ता कर्मफलस्वरूप मृत्यूपरान्त पारलौकिक जीवन मे विश्वासी है। प्राय॰ सभी प्राचीन धर्मो मे स्वर्ग-नरक की भावना विद्यामान थी। अवेस्ता मे भी उत्तम लोक एव अधम लोक की कल्पना है। मृत्यु के अनन्तर मृतात्मा की फ्रवषि चिन्वत् पॅरॅतु को पार करने जाती है। पॅरॅतु शब्द 'पृ' धातु से निष्पन्न है। पॅरॅतु के ही अग्रेजी-Bridge, हिन्दी-'पुल' शब्द विकसित है। यह भारतीय वैतरणी के समान है। पॅरॅतु के उस पार 'वहिश्त अड्हु' (स वसिष्ठ असु) अर्थात् उत्तम लोक एव इस पार 'अचिश्त अड्हु' (अघिष्ठ असु) पापपूर्ण अघिष्ठ लोक स्थित है। यह कल्पना पौराणिक लोकालोक से साम्य रखती है। चिन्वत् पॅरॅतु पर राम ख्वास्त्र मृतात्मा का मार्ग दर्शक होता है। वह मृतात्मा के शुभाशुभ कर्मो की तुलना करता है। शुभकर्म करने वाले सत्त्वप्रधान मृतात्मा की फ्रवषि वहिश्त अड्हु को प्राप्त करता है पृतशिरस् पापधिक्य के कारण अचिश्त अड्हु को प्राप्त करता है। चिन्वत् शब्द 'ची चयने' से निष्पन्न है जिसका अर्थ है- चयन करने वाला। सदात्मा का पृथक्-पृथक् चयन करने के कारण इसका इसका नाम चिन्वत् पॅरॅतु है। वेद पर आधृत भारतीय सिद्धान्त भी ऐसा ही है। गीता मे कहा गया है-

ऊर्ध्व गच्छन्ति सत्त्वस्था मध्ये तिष्ठन्ति राजसा:[3]

---

1 एकैक हासयेत् पिण्ड कृष्णे शुक्ले च वर्धयेत्।

उपस्पृशस्त्रिषवणमेतच्चान्द्रायण स्मृतम्।। मनु 2 16

2 प्रायश्चित्तानि पापक्षयसाधनानि चान्द्रायणादीनि। वेदान्तसार-6

3 गीता 14 18

जघन्यगुणवृत्तिस्था अधो गच्छन्ति तामसा.।।

ऋग्वेद- पृथक्प्रायन्प्रथमा देवहूतयोऽकृण्वत श्रवस्यानि दुष्टरा।

ये न शेकुर्यज्ञिया नावमारुहमीमैंव ते न्यविशन्त केपयः।।[1]

अर्थात् देवो का आह्वान करने वाले उत्तम जन अलग होकर गये, कठिनता से प्राप्त यशः पुञ्ज को पाया। जो लोग यज्ञ रूपी नाव पर आरोहरण करने मे समर्थ नही हुए, वे दुरात्मा लोग इसी लोक मे प्रविष्ट हुए।

पारसीक कृत्य- वैदिक श्रौत एवे गृह्य कर्मो के प्रतिरूप पारसीको के धर्म मे भी कर्मद्वैविध्य है। गृह्हकर्मो के संख्या तीन है उपनयन, विवाह एव मृतसस्कार। उपनयन की समाख्या नवजोत् (नवजातिः) है। इस सस्कार से बालक का द्वितीय जन्म होता है। वेद मे भी उपनयन को दूसरा जन्म कहा गया है-

आचार्य उपनयतानो ब्रह्मचारिण कृणुते गर्भमन्तः।

त रात्रीस्तिस्र उदरे बिभर्ति त जात द्रष्टुमभिसयन्ति देवाः।।[2]

अर्थ- 'उपनयन करता हुआ आचार्य ब्रह्मचारी को गर्भ के अन्दर करता है। तीन रात्रि उसको उदर मे भरता है, उत्पन्न हुए उसको देखने के लिए देवता लोग आते है।'' 'सस्काराद्द्विज उच्यते' आदि वचनो से मनु ने भी इसका प्रतिपादन किया है। जरथुश्त्र मतानुयायियो का नवजोत् संस्कार सातवे वर्ष से नवम वर्ष तक होता है। पन्द्रहवां वर्ष इसकी अन्तिम सीमा है, जिसका अतिक्रमण करने पर ज़रथुश्त्र धर्मी द्रुज् (द्रुह्) के वश मे हो जाता है। भारतीय सिद्धान्त के विपरीत इस सस्कार के सम्पादनार्थ काल मे भेद नही है। भारतीय सिद्धान्तानुसार ब्राह्मण, क्षत्रिय तथा वैश्य के लिए अन्तिम सीमा क्रमशः सोलवा, बीसवा एव चौबीसवां वर्ष है। इस काल का अतिक्रमण करने पर सार्ववर्णिक जन व्रात्य (सस्कार हीन) हो जाते है। प्राचीन वैदिक आर्यजनो की तरह पारसीको मे भी बालको एवं कन्याओ का उपनयन होता है। सामान्यतया यह कर्म प्रातः काल में सम्पन्न किया जाता है, पर कभी-कभी इस कृत्य को सायकाल मे भी सम्पादित किया जाता है।

---

1 ऋ० 10 44 6

2 अ०वे० 11 5 5

जिसका उपनयन होने वाला होता है, वह सर्वप्रथम स्नानकर पूर्व की ओर मुखकर के बैठता है तदनन्तर दीपप्रज्वालन होता है। आचार्य आकार बैठता है। उपनेतव्य उसके सम्मुख बैठता है। दीन यश्त् का सोपसहार पाठ करता है, एतदनन्तर आचार्य उपनीयमान को सद्रह् (सदरी) पहनाता है तत्पश्चात् आचार्य एव शिष्य दोनो कुस्ती-मन्त्र पढते है। आचार्य शिष्य को कुस्ती धारण करवाता है। एतत्कर्मोपरान्त उपनेतव्य यस्न के बारहवे परिच्छेद से जरथुश्त्रधर्मग्रहणविषयक मन्त्र पढ़ता है। आचार्य अन्त में 'तन्दुरुस्ति' नामक मन्त्र पढता है।

विवाह- अवेस्ता मे विवाह के लिए 'उपवध' का प्रयोग हुआ है। 'उद्वध' का अर्थ जबरन कन्या का अपहरण है, जो स्मृतिग्रन्थो मे वर्णित राक्षस विवाह का प्रतिरूप है। अवेस्ता मे विवाह की भूयसी प्रशसा है। हओम यश्त् मे दीर्घकाल से अविवाहित कन्याये सोम के सामने शोभन वर की प्रार्थिनी है। सोम उनकी इच्छा को पूर्ण करता है। विवाह का उद्देश्य पुत्रेच्छा थी। विर्धन व्यक्ति की कन्या के विवाह मे सहायता देना परम पुनीत माना जाता था। (विदअेव 4 44)। विधवा-विवाह प्रचलित था। बहुविवाह एव प्रेमविवाह के प्रमाण भी प्रभूत मात्रा मे उपलब्ध है। स्वय जरथुश्त्र की तीन पत्नियां थी। थ्रएतओन ने यम भगिनियो सघवाक् एव अरॅनवाक से विवाह किया था। अवेस्ता मे निकट के विवाह सम्बन्ध को 'ख्वएत्वदथ' कहा गया है (वेन्द 8 16, यश्त् 24-27, गाथा 4-8) विवाह अन्योन्यहृदयार्पण है, धर्मपूर्ण जीवन जीने का व्रत है। वेद मे भी ठीक यही तथ्य मिलता है।

मरणान्तर संस्कार-' प्राणनिर्गमनोनरान्त शव को जल स्नान कराया जाता है तदनन्तर सद्रह्-कुस्ती पहनाया जाता है। इस क्रिया के उपरान्त शव को श्वेत वस्त्र पहनाया जाता है और शव को बालुका अथवा प्रस्तर पर लिटा दिया जाता है। इस स्थिति मे मृतक के शरीर पर 'द्रुज्-इ-नसुष्' सज्ञक दएव का प्रभाव आ जाता है उसके निवारणार्थ अग्निप्रज्वलन एव पुरोहित द्वारा समन्त्रपाठ इध्मप्रक्षेपण किया जाता है। इसके ऊपर दो वर्तुल चिह्न युक्त कुक्कुर मृतक के शरीर के सूघता है। यह कर्म सग्-दिद् (शुनकदृष्टि) कहलाता है। एतत्समान ऋग्वेदीय विधान भी प्रतीत होता है। इसके पूर्व भी नसेह सालार सज्ञक पुरोहितद्वय वाज नामक एव उसके अनन्तर अहुनवइति सज्ञक गाथाओ का पाठ करते है। सग्-दिद् कर्मानन्तर दोनो पुरोहित मृत शरीर को 'दख़्म' संज्ञक गृह की तरफ ले जाते है। 'दख़्म' शब्द दघ् (ऊँचा होना) से बना है। आग्ल D1as शब्द भी इसी धातु से बना है। संस्कृत मे प्रमाण अर्थ मे दघ्नञ् प्रत्यय लगता है, जो कि निश्चित रूप से उपर्युक्त धातु से समुद्भूत है। ऋग्वेद में इसके समान पद 'आदघ्नासः' प्राप्त होता है।

दोनो पुरोहित 'दख्म' मे प्रवेश कर, शव को आवरणरहित कर नियत स्थान पर स्थपित कर देते है, जहाँ गृध्र लोग शव का भक्षण करते है। तीन दिनो तक स्त्रओष की स्तुति की जाती है, जो कि हिन्दुओ के त्रिरात्रि कर्म का प्रतिरूप है।

अब श्रौतप्रतिरूप कर्मो का वर्णन अवसर प्राप्त है। जरदुष्ट्रसम्प्रदायानुसारी जनो द्वारा तीन प्रकार की अग्नि का आधान प्रशस्त कर्म के रूप मे स्वीकृत है (1) आतिष् बह्राम (2) आतिष् आदरान् (3) आतिष् दाद्गाह। त्रिधा अग्नि मे सर्वाधिक पूज्य आतिष् बह्राम् ही है। वेन्दिदाद (8/81-96) के अनुसार षोडश प्रकार की अग्नियो के मेल से इस अग्नि का सम्पादन होता है, जिनमे चिताग्नि प्रथम है। वेद में चिताग्नि का शुभकर्मो मे सर्वथा निषेध है।[1] वेद मे भी त्रिविध अग्नि के आधान का विधान है, जो निम्नलिखित अभिधान वाले है- (1) गार्हपत्य, (2) आहवनीय (3) दक्षिण। मन्त्रपाठसमकालमेव काष्ठादि द्वारा इसका अनेक प्रकार से सस्कार होता है। इसके बाद वेन्दिदाद् एव यस्न के पाठ के साथ इसके अभिमन्त्रण का विधान होता है। इसके अनन्तर पूर्वोक्त षोडश अग्नियो को मिलाया जाता है और अग्निगृह मे इसे स्थापित किया जाता है। प्रतिदिन पुरोहित के द्वारा इस अग्नि मे आहुति दी जाती है अग्निगृह मे पुरोहितभिन्न कोई भी व्यक्ति प्रवेश नही कर सकता। प्रधान पुरोहित वैदिक सामधेनी कर्म के समान बह्याम् अग्नि मे समित्प्रक्षेपण करता है। अग्निपरिचर्या के अनन्तर पुरोहित मन्त्रपाठ के साथ हुमत, हूख्त एव हर्श्त का अग्नि मे उत्सर्ग करता है। वैदिक अग्निहोत्र याग मे दुग्धादि द्रव्यों के अभाव मे श्रद्धा का हवन होता है।[2]

आतिष् आदरान् - यह अग्नि अवेस्तावर्णित चारो वर्णो आथ्रवन, रथएश्तर, वास्त्रो फ्षूषन्त एव हुइति के गृह से लाकर सम्पादित किया जाता है। एतत्सज्ञक अग्नि का भी सस्कार आतिष् बह्रामवत् ही होता है किन्तु तीन बार ही, बहुत बार नही। चारो वर्णो से आनीत अग्नि का पृथक् अभिमन्त्रण होता है। इसके बाद चतुर्विध अग्नि को मिलाते है। सम्मिलित अग्नि मे आहुति दी जाती है, इसके बाद स्वागार मे इसको स्थापित किया जाता है।

तृतीय अग्नि का आधान अति सरल है। यह वैदिक गार्हपत्याग्नि के समान गृहस्थ के

---

1 अग्निमामाद जहि निष्क्रव्याद सेधा देवयज वह । वा स 1 17

2 स होवाच। न वाऽइह तर्हि किञ्चनासीदथैतदहूयतैव सत्य श्रद्धायामिति वेत्थाग्निहोत्र याज्ञवल्क्य धेनुशत ददामीति होवाच, श ब्रा 11 3 1 4

ही घर की अग्नि होती है। इसमे अग्नि का सस्कार नही होता अपितु अग्न्यागार का ही सस्कार एव अभिमन्त्रण होता है। अग्नि के प्रति इसी जारथुश्त्री श्रद्धा के कारण पारसीकजन अग्निपूजक कहे जाते है।

वैदिक यज्ञ का अवेस्तीय प्रतिरूप यस्न है। सस्कृत व्याकरण के अनुसार 'यज्' धातु से नङ्[1] प्रत्यय जुडने से यज्ञ शब्द निष्पन्न होता है। अवेस्ता मे धात्वन्त जकार का सकार हो गया एव यस्न शब्द बना। अवेस्तीय यस्न द्विविध है। प्रथम वे जो अग्न्यागार से सम्पृक्त दर्-इ-मेहेर् सज्ञक स्थान पर सम्पादित होते है तथा दूसरे प्रकार यस्न वे है- जो अग्निगृह से भिन्न अन्य स्थान पर भी किये जाते है। अग्न्यागार में सम्पाद्य यस्न तीन है- यस्न, विस्पॅरॅद् एव वेन्दिदाद्। यस्न याग मे सर्व प्रथम 'पर-यस्न' सज्ञक छः कर्म किये जाते है, जिनका अभिधान निम्न है (1) बर्सम् (बरस्मन्) (2) अइब्याओड् हनम् (3) उर्वराम् (4) जओथ्र (5) जिवाम् (6) हओम।

बरस्मन्- इसका सस्कृत रूपान्तर 'वर्ष्मन्' है, जिसका अर्थ उच्च शिखर है। किसी उच्च वृक्ष से यस्नार्थ 23 शाखाये मन्त्रवाचनपूर्वक गृहीत होती है इसीलिए इसका नाम बरस्मन् है। उन तेइस मे 21 बरस्मन् खर्जूरवृक्ष से मन्त्रपूर्वक काटे गये पत्तों से बॉधे दिये जाते है। यह प्रक्रिया वैदिक 'इध्मसन्नहन' से समानता रखती है। इसकी अवेस्तीय समाख्या अइब्याओड् हनम् है जिसका सस्कृत समरूप अभ्यसनम् है। उर्वराम् (सस्कृत-उर्वरा) यह वैदिक उद्भिद् याग के समान है। उर्वरा का वैदिक अर्थ उद्भिद् भी है। फ्रेन्च Arbre का अर्थ भी वृक्ष है। अवेस्तीय साहित्य मे यह अनार के वृक्ष के अर्थ मे रूढ हो गया है। अभ्यसन के समय अनार शाखा का छेदन होता है। वैदिक दर्शपूर्ण मास याग मे पलाश शाखा अथवा शमीशाखा के छेदन का विधान है।[2]

ज़ओथ्र (संस्कृत-होत्रम्) इसका अर्थ पवित्र जल है। यह कर्म वैदिक 'अपा प्रणयनम्' के सदृश है।

जिवाम् (स गव्य) यह प्रथित तथ्य है कि हिन्दुओ के विभिन्न धार्मिक अवसरो पर उपयुक्त होने वाले पञ्चगव्य मे गोदुग्ध भी सम्मिलित है। सस्कृत मे गो के विकार अर्थ मे

---

1 यजयाचयतविच्छप्रच्छरक्षो नङ् (पा 3 3 90)

2 पर्णशाखा छिनत्ति शामीली वा (का श्रौ सू 4 30)

गो शब्द से यत् प्रत्यय लगता है।[1] गव्य का अवेस्तीय अर्थ केवल दुग्ध है किन्तु इस कर्म मे छागी के दुग्ध का उपादान होता है गो के दुग्ध का नही। अषॅम् वोहू मन्त्र के साथ छागी को दुहा जाता है। वैदिक कर्म मे भी समन्त्रक गोदोह का विधान है।[2] सम्भवत. प्राचीन काल मे एकदर्थ पारसीकजन भी गोदुग्ध का प्रयोग करते थे। जिवाम् का अनेकविध उपयोग होता था।

हओम याग- यह वैदिक सोम याग का प्रतिरूप है। इस याग मे हओम (सोम) ही द्रव्यरूप मे गृहीत होता है। हओम एक क्षुप है, जिसका वर्णन यजत-परिचय मे हो चुका है। प्रारम्भिक कार्यो के अनन्तर सोम का अभिषव होता है। उसके बाद जओता (स होता) हओम की स्तुति करता है इसके आत्रवक्ष्य नामक ऋत्विज् हओमपात्र का अग्नि के परित. नयनपूर्वक जओता को प्रदान करता है। जओता उस रस का पान करता है। चूकि जरथुश्त्रीय मतानुसार किसी भी द्रवद्रव्य का अग्नि मे प्रवेक्ष नही होता अत: हओम को अग्नि मे नही डाला जाता। जरथुरत्र के मत मे सोम का दो बार सवन होता था, जबकि वेद मे सवनत्रय का विधान है। यह ध्यातव्य है कि यह याग प्रधान यस्न का अड्.गभूत है।

यस्न याग- यह हिन्दुओ के पारायण के सदृश है। जैसे किसी विशेष सकल्प से वेद अथवा उसके किसी अंश अथवा गीता, भागवतादि का पारायण होता है, उसी प्रकार मुख्यरूप से यह अवेस्ता के यस्न भाग के समग्र द्वासप्तति हा सज्ञक परिच्छेद का पाठरूप है। हमारे श्रौतादि कर्मो मे जिस प्रकार सड्.कल्पवचन मे यजमान का नाम उसके गोत्र के साथ लिया जाता है उसी प्रकार जिस जीवित अथवा मृत व्यक्ति के लिए यस्न कर्म किय जाता है, उसका नाम प्रारम्भ में दोनो ऋत्विजो द्वारा लिया जाता है। इस याग मे पहले प्रथम एव द्वितीय परिच्छेद का पाठ किया जाता है, जिससे अहुरमज़्दा एव उसके अन्य सहायक यजतो की स्तुति होती है।

परग्ना कृत्य के अवसर पर दारन् सज्ञक पुरोडाश के पाकपूर्वक तृतीय से प्रारम्भ कर सप्तम हा तक यस्नपाठ के समय 'दारन्' का सस्कार होता है। अष्टम 'हा' के पाठ के समय उसका उत्सर्ग होता है। उसके बाद ज़ओता दारन् के एक अश हो खाता है तथा पुरोडाश के

---

1 गोपयसोर्यत् (पा 4 3 160)

2 श ब्रा- 1 7 1 17

शेष भाग का अन्यजन भक्षण कहते है। यह कर्म वैदिक प्राशित्रप्राशन[1] से समानता रखती है।

दारन्-भक्षणोपरानत बाद के 'हा' का पाठ होता है। (नवम से प्रारम्भ कर) द्वादश 'हा' के पाठ के समय पर हओम याग किया जाता है। अन्तिम 'हा' के पाठ के बाद दोनो ऋत्विज् कुस्ती नाम्नी पवित्र मेखला का पुनः सन्निवेश करते है। इसके बाद दोनो ऋत्विज् अग्न्यागारीय कूप में जओथ्र (स होत्र) पवित्र जल को गिराते है। यह वैदिक अपानिनयन के समान है। इसी प्रकार विस्पॅरॅद् एव वेन्दिदाद् याग भी पाठ द्वारा सम्पन्न किये जाते है।

उपर्युक्त विशिष्ट कर्मो के अतिरिक्त 'आफ्रिड्गन' आदि कुछ बाह्य याग भी सम्पन्न किये जाते है। 'आफ्रिड्गन्' का सस्कृत रूप 'आप्रीणन' है, जिसका अर्थ है पूर्ण रूप से प्रसन्न करना या तृप्त करना। यह वैदिक पिण्डपितृयाग के सदृश है। इसमे किसी मृत व्यक्ति की तृप्ति के निमित दुग्धादि का अभिमन्त्रण होता है।

'बाज' सज्ञक कर्म उपाशु रूप से किया जाता है। शतपथ ब्राह्मण मे भी प्रजापति की उपासना उपाशु रूप से करने का सहेतुक निर्देक है।[2]

अवेस्ता की भाषा- अवेस्ता की भाषा को ग्रन्थ क नाम के आधार पर अवेस्तन-भाषा कहा जाता है। वैसे कुछ विद्वद्वर्य इस भाषा को प्राचीन बैक्टीरियन कहते है। अवेस्ता भाषा का वैदिक भाषा से नेदीयान् सम्बन्ध है। अवेस्तीय शब्द भूयस्त्वेन वैदिक शब्दो के साम्य से युक्त है पर लौकिक सस्कृत एव प्राकृत भाषा के साम्य वाले शब्द भी प्राचुर्येण उपलब्ध है। कुछ ध्वनिसम्बन्धी परिवर्तन कर देने पर अवेस्तीय शब्दो को वैदिक (सस्कृत) रूप मे परिवर्तित किया जा रहा है। जैसे-

हावनीम् आ रतूम् आ

हओमो उपाइत् जरथुश्त्रम्

को नर अही।

वैदिक (सस्कृत) रूप- सावनीम् आ ऋतुम् आ

सोमः उपैत् जरदुष्ट्रम्

---

1 श ब्रा- 1 8 1 38-41

2 श ब्रा- 1 4 5 8-12

कः नरः असि।

अवेस्ता- म्रओत् अहुरोमज्दो स्पितमाइ जरथुश्त्राय।

वैदिक (संस्कृत) रूप- अब्रवीत् असुरो मेधाः श्वेततमाय जरदुष्ट्राय।

सस्कृत भाषा के शब्दो के अवेस्तीय रूप मे पतिवर्तन मे अधोलिख्यमान प्रवृत्ति प्रमुखरूप से दृष्टिपथ को प्राप्त होती है।

सस्कृत भाषा के सकार का अवेस्तीय भाषा में प्रायः हकार हो जाता है-

सस्कृत	अवेस्ता
सोमः	हओमो
स्वर्	ह्वर्
सप्त	हप्त
असुरः	अहुरो
सिन्धु	हिन्दु
सुचित्र	हुचिथ्र

वकार के साथ सयोग होने पर सकार का प्रायः खकार हो जाता है-

सस्कृत	अवेस्ता
स्वर्	ख्वर्
अस्विदत्	ख्वीसतच्
स्वृतये	ख्वरतये
स्वरणस् यद्वा स्वर्णस्	ख्वरनह्
स्वतः	ख्वतो

वकार के साथ संयोग होने पर भी कही-कही ह् ही मिलती है यथा .स्वो- ह्वो। स् का स् रूप भी मिलता है-

संस्कृत	अवेस्ता

स्तुतिः	स्तूइतिश्
अस्थिवती	अस्त्वइती
अस्ति	अस्ति
स्कन्नम्	स्कन्दम्
स्तौमि	स्तओमि

सस्कृत का हकार अवेस्ता मे प्रायः जकार हो जाता है-

सस्कृत	अवेस्ता
हस्त	जस्त
अहम्	अजम्
हिरण्य	जरन्य
हरि	जइरि
अहिम्	अजीम्
अहनत्	जनत

ककार का किसी व्यञ्जन से सयोग होने पर, कभी बिना व्यञ्जन संयोग के भी खकार हो जाता है-

सस्कृत	अवेस्ता
क्रतुः	खतुश्
क्रूरः	खूरो
क्रविष्यतः	खविष्यतो
उक्त	उख्ध
कुम्ब	खुम्ब

पकार का रेफ से संयोग होने पर पकार का फकार हो जाता है-

सस्कृत	अवेस्ता
प्रिय:	फ्रयो
प्रचराणि	फ्रचराने
परिप्रश्न	पइरिफ्रास
प्रथस्	फ्रथह्
प्रशस्ति	फ्रसस्ति

सस्कृत की महाप्राणा ध्वनिया अवेस्ता मे कहीं-कही अल्पप्राण हो गयी है।

सस्कृत	अवेस्ता
घोषम्	गओषम्
धारयत्	दारयत्
अघ	अग
अस्थिवत:	अस्त्वतो
धेना	दएना
स्थूणा	स्तूना
भग	बग
भूमिम्	बूमिम्

कभी-कभी अल्पप्राण का महाप्राण भी हो जाता है-

सस्कृत	अवेस्ता
पुत्र	पुथ्र
वृत्र	वॅरॅथ्र
सरिवत्र (अघोष अल्पप्राण)	हखथ्र (सघोष महाप्राण)

संस्कृत भकार का अल्पप्राण होकर बकार होने के अतिरिक्त 'भ' का 'व' भाव भी

असकृद् दिखाई पडता है-

सस्कृत	अवेस्ता
उभर	उवय
अभ्र	अव्र
अभृत	अवॅरॅत
अभि	अइवि

एव ब्रू धातु म्रू इस रूप मे प्रयुक्त है।

सस्कृत	अवेस्ता
अब्रवीत्	म्रओत्
ब्रुवे	म्रुये

शकार का वकार से सयोग होने पर शकार का सकार एवं वकार का पकार मे परिवर्तन हो जाता है।

सस्कृत	अवेस्ता
अश्व	अस्प
श्वेत	स्पित, स्पएत
श्वन्	स्पन्
श्वीयस्	स्पन्यह्

सस्कृत-सकार के स्थान पर हुए हकार के पूर्व वाजसनेयी सहिता के 'ग्वं' के अनुरूप 'ङ्.' का आगम होता है। यद्यपि दोनो मे अन्तर यह है कि वा. स मे ग्व अनुस्वार के स्थान पर होता है किन्तु अवेस्ता में यह अनुस्वार के स्थान पर न होकर आगमरूप में होता है-

सस्कृत	अवेस्ता
असु	अङ्हु
श्रवस्	श्रवङ्.ह्

ओजस्	अओजड ह्
याचस्व	यासड् उह
असद्	अड् हद्

नकार से सयोग होने पर एव कभी-कभी स्वतन्त्र रूपसे सस्कृत के जकार का अवेस्ता मे सकार हो जाता है-

सस्कृत	अवेस्ता
यज्+न=यज्ञ	यस्न

सस्कृत	अवेस्ता
यश्त्	यजत
आ+जन् से	आस्न

सस्कृत छकार का अवेस्ता मे सकार हो जाता है-

सस्कृत	अवेस्ता
इच्छति	इसाइति
पृच्छ्	पॅरॅस्
पृच्छा	फ्रसा
यच्छति	यासाइति

सस्कृत 'ओ' का अवेस्ता मे 'अओ' एव 'औ' का 'आउ' हो जाता है, यदि वे पद के अन्त मे न हो तो। 'औ' का पद के अन्त मे भी 'आउ' हो जाता है

संस्कृत	अवस्ता
सोमः	हओमो
ओजस्	अओजड्.ह्
मोघ	मओग
ओष्ठ	अओश्त्र

ओमन्	अओमन्
गौः	गाउश्
असौ	हाउव, हाउ

सस्कृत के अपदान्त 'ए' का 'अए' (अऐ) और किसी भी प्रकार के 'ऐ' का 'आइ' हो जाता है-

सस्कृत	अवेस्ता	सस्कृत	अवेस्ता
देव	दएव	अस्मै	अह्माइ
एव	अएव	कस्मै	कह्माइ
एतत्	अएतत्	मन्त्रैः	माथ्राइश्
मेष	मएष	उपैत्	उपाइत्
पेशस्	पएसङ् ह		

स्वर-व्यत्यय होकर कभी-कभी 'ए' के स्थान पर 'ओइ' भी उपलब्ध होता है-

सस्कृत	अवेस्ता
वेत्थ	वोइस्त

इकार एव यकार का किसी व्यञ्जन से सयोग होने पर पूर्व मे 'इ' का आगम होता है। यकार के पूर्व यह आगम 'य्' के अर्धस्वर एव 'इ' के समरूप होने के कारण होता है-

सस्कृत	अवेस्ता
स्तुति	स्तुइति
अभि	अइवि
जहि	जइधि
प्रति	पइति
मन्यु	मइन्यु
असत्य	अङ् हइथ्य

कभी-कभी यकार को व्यञ्जन सयोग होने पर भी पूर्व मे 'इ' का आगाम नही होता यथा-

सस्कृत	अवेस्ता
मर्त्य	मश्य

कभी-कभी बिना व्यञ्जन सयोग के ही 'इ' का आगम हो जाता है-

सस्कृत	अवेस्ता
यम	यिम
यम्	यिम्

इकार का दो व्यञ्जन से सयोग होने पर एव पदादि मे व्यञ्जन-सयोग होने पर 'इ' का आगम नही होता है-

सस्कृत	अवेस्ता	सस्कृत	अवेस्ता
अस्ति	अस्ति	चित्तिः	चिस्तिष्
भरन्ति	बरन्ति	विश्व	विस्प (वीस्प)
तञ्चिष्ठः	तञ्चिश्तो		

उकार एवं वकार का किसी व्यञ्जन से सयोग होने पर पूर्व मे 'उ' का आगम होता है-

संस्कृत	अवेस्ता
दारु	दाउरु
तरुण	तउरुन
अरुण (अरण)	अउरुन
अरुष	अउरुष
पुरु	पोउरु
सर्व	हउर्व
खर्व	कउर्व

किन्तु दो व्यञ्जन से सयोग होने पर एव पदादि मे व्यञ्जन-सयोग होने पर 'उ' का आगम नही होता है-

सस्कृत	अवेस्ता
भरन्तु	बरन्तु
अस्तु	अस्तु
भूमिम्	बूमिम्
बुध्येत	बूइध्यएत

इसके अतिरिक्त मात्राओ का ह्रस्वीकरण, दीर्घीकरण आदि प्रवृत्तियॉ भी उपलब्ध होती है। यथा-

सस्कृत	अवेस्ता
स्तुतः	स्तूतो
ऋतुम्	रतूम्
सूनवः	हुनवो
तनूनाम्	तनुनाम्

अवेस्तीय भाषा की ध्वनि-सम्बन्धी और बहुत विशिष्टताये है, जिनका सूक्ष्म विवरण प्रस्तुत कार्य मे सम्भव नही है। अवेस्तीय रूप-रचना भी सस्कृत की तरह ही है। नाम, आख्यात, उपसर्ग, निपात ये चारो पद विभाग अवेस्ता मे प्राप्त है। सस्कृत की भॉति ही यहॉ भी नाम (सज्ञा, सर्वनाम) की सातो विभक्तियो का प्रयाग हुआ है, एव सम्बोधन-पद भी सस्कृतवत् है। तीन लिङ्ग एवं तीन वचन यहॉ भी प्रयुक्त है। तीन पुरुष भी सस्कृत के समान ही है। सस्कृत के समान ही उपसर्ग यहॉ भी किसी नाम अथवा आख्यात के पूर्व जुडते है एव निपात स्वतन्त्र रूप से वाक्य में प्रयुक्त होते है। धातुरूप भी परस्मैपदी एवं आत्मेनपदी द्विधा थे-

परस्मैपदी-बरइति (सं भरति) परॅसत् (स अपृच्छत्) जसत् (सं अगच्छत्)

आत्मनेपदी-बरइते (सं. भरते) यासङु ह (याचस्व) यजत (अयजत)

अवेस्ता मे निम्नलिखित लकारो का प्रयोग हुआ है-

लट्- स्तओमि (स स्तौमि) स्तओमि मएघॅम् च वारॅम् च (हओम यश्त्, यस्न 10 3)

म्रुये (स ब्रुवे) नि ते जइरे मधॅम् म्रुये (हओम यश्त्, यस्न 9 17)

अस्ति (स अस्ति) उश्ता अस्ति (अषॅम् वोहू)

लोट् बरतु (स भरतु) फ्रचराने (स प्रचराणि) वसो क्षथ्रो फ्रचराने, फ्रक्ताने (स प्रतिष्ठानि) फ्रक्ताने जमा पइति (हओम यश्त्, यस्न 9 20)

लिङ्- ख्याम (स स्याम) अत च तोइ वअेम ख्यामा (अवेस्ता, यस्न हा 30 9) आशीर्लिङ् दायात् (स धेयात्)

लङ् यजत (स अयजत) तॉम् यजत यो अषव जरथुश्त्रो (यश्त् 5 103)

पॅरॅसत् (स अपृच्छत्) आ दिम् पॅरॅसत् (हओम यश्त, यस्न 9 1)

लेट्- वसत् (स वशत्) अथा न अड्हत यथा ह्वो वसत (हा 21 4)

चरात्- (स चरात्)

बवाहि (भवाहि)

लिट्

लृट् वख्श्या (स वक्ष्यामि)

वरशइते (सं. वर्क्ष्यते) (कर्मवाच्य)

इसके अलावा भी णिजन्त 'उरुपयेन्ति' (सं रोपयन्ति) सन्नन्त 'जीजिषन्ति' (स जीजिषन्ति) यड.न्त 'चरॅकॅरॅमही' (स चर्करीमः) नामधातु-नमह्यामहि (नमस्यामहि) आदि का भी प्रयोग मिलता है।

कृदन्तो एव तद्धितों का प्रयोग भी अवेस्ता मे भूरिशः उपलब्ध है-

कृदन्त- दएवोदातो (स देवहितः)

ख्वरतये (स्वृतये)

स्रावयन्तम् (श्रावयन्तम्)

अजयम्नॅम् (अज्यायमानम्)

तद्धित- अयङ्हो (स आयसः) कतमो (स कतमः) बित्यम् (स द्वितीयम्) थ्रितीम् (स तृतीयम्) वङहुथ्व (स वसुत्व) हप्तथ (सप्तथ) अस्त्वतो (स अस्थिवतः)।

स्त्रीप्रत्यय- अषओनी (स ऋतावरी) पोउरुचिस्ता (स पुरुचित्ता)।

वैदिक सस्कृत के समान अवेस्ता मे भी छोटे समासो का प्रयोग हुआ है यथा-दउश्-स्रवो (स दुश्श्रवाः) हजङ्र- यओक्ष्तीम् (स सहस्रयुक्तिम्) वनत् पषनो (स वनत्पृतनः) दएवोदातो (स देवहितः) द्र्वास्प (स. ध्रुवाश्व) हुचिथ्र (स सुचित्रः) विश्पइति (विश्पतिः)।

वेदो के अध्ययन एव अर्थनिर्धारण की दृष्टि से महत्त्वपूर्ण होने एवं सस्कृतभाषा से समानता के अतिरिक्त अवेस्ता इस दृष्टि से भी महत्त्वपूर्ण है कि प्राचीन फारसी,पह्लवी आधुनिक फारसी भाषाओ का विकास इसी मूल से हुआ है। इन भाषाओ के ऐतिहासिक एव कालक्रमिक विकास के जिज्ञासुओ को अवेस्तीय भाषा की ओर अवश्य दृष्टिपात करना होगा। बुन्देहिश्न, दीनकर्त् एव फिरदौसी के महाकाव्य 'शाहनामा' आदि के मूल उत्स अवेस्ता मे ही लभ्य है। भाषाशास्त्रीय आलोक मे कुछ शब्दो को तुलनात्मक दृष्टि से प्रस्तुत किया जा रहा है।

अवेस्ता- ख्शथ्र (स क्षत्र) प्रा. फा ख्शास्स, पह् शह्र, अग्रेजी-City।

अवेस्ता- गरोन्मान् (स गरुत्मान्) आ फा गर्जमान।

अवेस्ता- जओश्तर (स. जोष्टृ) प्रा फा दउश्तर्, आ फा. दोस्त।

अवेस्ता- हन्जमन (स सङ्गमनम्) पह् हन्जमन, आ. फा अन्जुमन।

अवेस्ता- हिज्वा (स जिह्वा) पह्-उज्वान, आ फा -जुबॉ।

अवेस्ता- फ्रजइन्ति (सं प्रजातिः) पह् फर्जन्द् , आ फा फर्जन्द।

अवेस्ता- रओचङ्ह (रोचस्) प्रा. फा रओचो, आ फा रोज, रोजा (एक माह चलने वाला मुसलमानो का व्रतविशेष। इस व्रत मे दिन मे कुछ भी खाया-पिया नही जाता है।)

अवेस्ता- वहु (तर) (स वसुतर) आ फा बेहतर, अ Better, ज Besser।

अवेस्ता- ब्रातर् (स भ्रातृ) प्रा फा ब्रातर् , आ फा बिरादर, अ Brother ज Biuder।

अवेस्ता- दुग्धर् (स दुहितृ) प्रा फा दुख्तर, अ Daughter ज Tochter।

अवेस्ता- जरन्य (स हिरण्य) पह् जरीन् , प्रा फा दरनिय, आ फा जरीन, दीनार, अ Gold।

अवेस्ता- आत्र आथ्र (स अथर्) प्रा फा आथ्रि (यादिय, यह एक मास का नाम है)। पह् आतार, आतशः आ फा आदर, आतश ।

अवेस्ता- बरजन्त (स बृहत् , बृहन्त) पह् बूलन्द, आ फा बुलन्द्।

अवेस्ता- जस्त (स हस्त) प्रा फा दस्त, आ फा दस्त।

अवेस्ता- अरॅज (स अर्ह, अर्घ) पह् अर्ज, आ फा अर्ज।

अवेस्ता- अउर्वन्त् (स अर्वन् , अर्वन्त) पह् अर्बन्द, आ फा अर्बन्द।

अवेस्ता- दुज् (स द्रुह्) प्रा फा दुरुज् , पह्लवी-द्रुजीजन् (धातु)।

अवेस्ता- नपात् (स नपात्) प्रा फा नपा, आ फा नबीसा, नवासा।

अवेस्ता- नमङ्.ह (स नमस्) पह् नमाच् , आ फा नमाज।

अवेस्ता- नइर्य (स नर्य) पह् नेरोक् , आ फा नीरो।

अवेस्ता- पस्कात् (स पश्चात्) प्रा फा पसाव, आ फा पस।

अवेस्ता- पितर् (स पितृ) प्रा फा पितर् , आ फा पिदर, अ Father ज Vater।

अवेस्ता- दओश (सं. दोष) पह्. दोश, आ फा दोश।

अवेस्ता- बिश् (सं भिषज्) पह् बेशाजेनीतन (धातु), आ फा पिजिश्क, अ Physician।

अवेस्ता- मिज़्द (स मीढ) पह् मोज़्द, आ फा मुज़्द।

अवेस्ता- यश्त् (सं. इष्ट, यजत) आ फा. एजद (ईश्वर)।

अवेस्ता- हुश्क (स शुष्क) पह् खुश्कीह (शुष्कता), आ फा खुश्क।

अवेस्ता- हउर्व(स सर्व) आ फा हर।

अवेस्ता- स्पस् (स स्पश्) पह् स्पास् , आ फा सिपस।

अवेस्ता- हुस्रवङ्ह् (स सुश्रवस्) पह् हुस्रोब, आ फा खुसरो।

अवेस्ता- हुचिथ्र (स सुचित्र) पह् हुचिह्न, हुजीर् ; आ फा हुजूर।

अवेस्ता- पक्ष्त (स पृक्त) आ फा चस्प।

अवेस्ता- स्पन् (स श्वन्) पह् सग्, आ फा सग्।

अवेस्ता- स्पाध (स स्पर्ध्) पह् स्पाह् , आ फा सिपाह।

2

आवाँ अर्द्धी सूर्य यन्त्र का विशास्त्रीय वैशिष्ट्य

आवाँ अर्द्वी सूर् यश्त् का देवशास्त्रीय वैशिष्ट्य

अवेस्ता-वाड्मय के यश्त् भाग मे पचम यश्त् 'आवॉ अर्द्वी सूर्' इस अभिधान से मण्डित है। इस यश्त् के अन्तर्गत दिव्य जलो की अधिष्ठात्री देवी अरॅद्वी सूरा अनाहिता की महिमा का गान किया गया है। आवॉ का सस्कृत रूप 'आपान' (जल) है। फारसी 'वियाबान्' का 'आबान' शब्द 'आवॉ' से ही विकसित है। स आपः आ फा- आब् आदि भी अर्थ की दृष्टि से पूर्णतया एव ध्वनि की दृष्टि से अधिकाशतया एतत्साम्यभृत शब्द है।

'अरॅद्वी' शब्द सस्कृत 'ऋद् आर्द्रीभावे' से निष्पन्न है अतः इसका सस्कृत रूप 'ऋद्वी' होगा। अर्थतया स आर्द्रा इससे अधिक निकट है। सस्कृत मे जलवृष्टिप्राय एक नक्षत्र का नाम भी 'आर्द्रा' है। संस्कृत 'सित' का अर्थ 'श्वेत' है, 'नञ्' के जुडने से 'असित' (काला) शब्द बनाता है। पुनः 'नञ्' जुडने से अनसित हुआ। सस्कृत सकार का अवेस्ता मे हकार हो जाना सुविदित तथ्य है। इस प्रकार अनसित >अनहित इस रूप मे विकास हुआ एव स्त्रीत्व द्योतक 'टाप्' प्रत्यय के सयोग से 'अनाहिता' शब्द निष्पन्न है। इसका अर्थ है जो काली या दागदार नही है। दो 'नञ्' प्रकृत्यर्थ को कहते है।

शिव धातु का अर्थ है- सूजना और बढना। शिव मे इकारलोप एव वकार का उकार होकर पुनश्च मत्वर्थीय 'र' -प्रत्यय के सयोग से 'शूर' शब्द निष्पन्न है। सस्कृत के तालब्य शकार के स्थान पर अवेस्ता मे अनेकत्र दन्त्य सकार की उपलब्धि होती है, अतः शूर का समरूप अवेस्तीय शब्द सूर है स्त्रीत्व विवक्षा होने पर आ (टाप्) के सयोग से सूरा पद निष्पन्न है। 'शूर' से आड्ग्ल भाषीय 'Hero' शब्द भी विकसित है।

'अनहिता' शब्द के नकारोत्तरवर्ती अकार का दीर्घीकरण होकर अनाहित शब्द बना। यह भी ध्यातव्य है कि यशतान्तर्गत असकृद स्थलो पर 'अनाहित' शब्द भी प्रयुक्त है। इस प्रकार 'अरॅद्वी' का अर्थ गीली (Moist) सूरा का शक्तिशालिनी (Powerful) एव अनाहित का निष्कलड्का (Spotless) है[1]।

Prof Louis H Gray[2] के अनुसार 'अरॅद्वी' का अर्थ उच्च (Lofty) 'सूरा' का

---

1 Avesta Reader - Hans Reichelt Page - 100

2 The Foundation of the Iranian Religion Page - 55

शक्तिशालिनी (Mighty) एव 'अनाहिता' का निष्कलङ्का (Undefiled) है। अन्य अर्थ सङ्गत है किन्तु 'अरॅद्वी' का (Lofty) यह अर्थ ठीक नही है।

'अरद्वी सूरा अनहिता' का अवेस्तीय यजतो के मध्य एक महत्त्वपूर्ण है। विभिन्न फल की प्राप्ति हेतु अनेक अवेस्तीय गाथेय वीरो द्वारा वह स्तुत हुई है। वह मनुष्यो के वीर्य को शुद्ध करने वाली, स्त्रियो को सुसन्तति से युक्त करने वाली एव उनके स्तन मे उचित मात्रा मे दुग्ध भरने वाली है। (अ सू यश्त 2)। इस नदी की जलधारा सातो कर्ष्वों के ऊपर बहती है एव चाहे शरद् ऋतु हो या आतप, इसमे जल सदैव भरा रहता है। (अ सू यश्त 5)। यह 'बअेषज्या' (भेषज्या) ओषधिगुणवती, 'वीदअेवा' (विदेवा) देव-विरोधिनी, 'अहुरत्कअेषा' (असुर-चिकितुषी) असुर के निमय का पालन करने वाली, 'अषओनी' (ऋतावरी) 'मसिता' (महती) 'दूरात् फ्रसूता' (दूरात्-प्रश्रुता) दूर तक प्रसिद्ध, 'अमवइती' (अमवती) शक्तिशालिनी, 'सॅविश्ता' (श्रविष्ठा) सर्वाधिक कीर्तिशालिनी, पॅरॅथु-फ्राका (पृथु-प्राञ्चिता) 'विस्तृत प्रसार वाली' आदि अनेकानेक विशेषणो से मण्डित है।

यह सहज देवशास्त्रीय प्रक्रिया है कि जब किसी प्राकृतिक दृश्य अथवा किसी द्रव्य का दिव्यीकरण होता है तो अधिकाशतया उसके शारीरिक अवयवो की कल्पना कर ली जाती है। स्थिति तो यहाँ तक पहुँच जाती है कि अचेतन मे भी चेतनवद् व्यवहार दिखाई दिखाई पडने लगता है। वेद मे अनेक ऐसे प्रसङ्ग है यथा- **अभिक्रन्दन्ति हरितेभिरासभिः** (हरे मुख से क्रन्दन करते है) (**ऋग्वेद**-10/94/2) **होतुश्चित्पूर्वे हविरद्यमाशत** (होता के समक्ष खाद्य हवि को खाया)। मुख से युक्त होना एव क्रन्दन, अशन आदि क्रिया पाषाण मे सम्भव नही है, किन्तु मन्त्रो मे ऐसे तथ्य मिलते है कि ऐसा हुआ है। उसी प्रकार **ओषधे त्रायस्वैनम्** (ओषधे। इसे बचाओ) (**मैं. सं.**-3/9/2)। भारतीय दार्शनिक परम्परा ऐसे स्थलो पर उन-उन तत्त्वो के अभिमानी देवताओ का वर्णन मानकर इन स्थलो को सङ्गतार्थ सिद्ध करती है। (**अभिमानि-व्यपदेशस्तु विशेषानुगतिभ्याम्-ब्र.सू.** 2/1/3)।

'अरॅद्वी सूरा अनाहिता' का वर्णन एक अति लावण्यवती, सुकुलाचारवती दिव्याङ्गना के रूप मे हुआ है। उसके बाहु अत्यन्त सुन्दर हैं- **स्त्रीर वा अङ्हन् बाजव (अ.सू. यश्त्** 7)। वह 'क्षोइथ्नी' (छवित्री) अर्थात् चमकीली, 'बरॅज़इती' (बृहती) अर्थात् लम्बी, हुरओधा (सुरोधा) अर्थात 'सुवदना' है। उसका ऐडी तक जूते पहने हुए एव सुनहले एव चमकीले आभूषणो को धारण की हुई कन्या के रूप में वर्णन है- (अ. सू यश्त् 64)। इसके रथ को चार अश्व खीचते है जो सभी एक कुल के, एक रङ्ग के, सभी श्वेत एव लम्बे, देवो,

मर्त्यो, यातुओ परियो आदि के द्वेष को हिसित करने वाले है:-

यञ्हे चथ्वारो वश्तार

स्पअेत वीस्प हम-गओनोाेड.हो

हमनाफअेनि बॅरॅज ॅत

तर्उवय ॅत वीस्पनॉम् त्बिष्वतॉम् त्वअेषो

दअेवनॉम् मश्यानाम्च

याथ्वॉम् पइरिकानॉम्च

साथ्रॉम् कओयॉम् करफ्नॉम् च (अ.सू. यश्त्-11)

वृष्टि, वायु, मेघ एव ओला ये ही चार अश्व है। इसके अतिरिक्त उसके अन्यान्य वस्त्राभरणो का उल्लेख हुआ है। (अ सू यश्त् 123, 126)

उसका निवास तारो के मध्य है (अ सू यश्त् 85) और उससे अहुर मज्दा ने स्वस्थापित पृथ्वी पर अवतरणार्थ प्रार्थना किया। उसका तारो के मध्य निवास भारतीय साहित्य मे वर्णित व्योमगङ्गा अथवा गङ्गा के स्वर्ग-निवास से अद्भुत साम्य रखता है। कालिदास ने मेघदूत मे व्योमगङ्गा वा उल्लेख निम्नलिखित पक्तियो मे किया है-

तत्र स्कन्दं नियतवसतिं पुष्पमेघीकृतात्मा

पुष्पासारैः स्नपयतु भवान् व्योमगङ्गाजलार्दैः॥[1]

अवेस्तीय 'अर्द्वी सूरा अनाहिता' का अहुर मज्दा ने आनयन किया एव भारतीय गङ्गा के आनयन मे भगवान् शिव का विशिष्ट योगदान है।[2]

साधु एव दुष्ट दोनो प्रकृति के व्यक्तियो द्वारा इसके यज्ञ का वितान किया गया। अहुरमज्दा, हओस्यङ ह् परदात, यिम, अजीदहाक, थ्रअेतओन, करॅसास्प, फ्रङ्गरस्यान्, कवि उसन्, हओस्रवह्, वअेसकात्मज तुस, पउर्व जामास्प, अषवज्दह, विस्तउरु, योइश्त, जरथुश्त्र,

---

1 मेघदूत 1/43

2 तथेति राज्ञाभिहित सर्वलोकहितः शिव.।

दधारावहितो गङ्गा पादपूतजला हरे॰॥ (श्रीमद्भागवत 9 9 9)

विस्तास्प, जइरिवइरि एव वन्दारमनिश् आदि लोग विभिन्न कामनाओ से उसके याजक हुए। इन याजको मे जो सन्मार्गगामी थे उनको अरॅद्वी ने अभीष्ट वर से पुरस्कृत किया किन्तु उत्पथगामियो को उसने स्वानुग्रह से वञ्चित रखा।

अनाहिता का वैदिक सरस्वती से बहुत ही अधिक साम्य है। यद्यपि वैदिक सरस्वती का अवेस्तीय समरूप हरवइती है किन्तु रूपगतसामान्य को छोडकर यदि सरस्वती एव अरॅद्वी सूरा अनाहिता के स्वरूप-साम्य एव वर्णनो पर सूक्ष्म दृष्टि डाले तो दोनो मे अद्भुत साम्य दृष्टिगोचर होता है। जिस प्रकार अरॅद्वी (नदी या जल देवी) की उदात्ततम स्तुति एव महनीयता अवेस्ता मे अभिव्यक्त हुई है, उसी प्रकार सरस्वती को वेद मे नदियो के मध्य प्रकृष्टतम स्थान मिला है। अरॅद्वी का उद्गम स्थल हुकइर्य पर्वत है वह वहाॅ से शक्ति के साथ वोउरु-कष समुद्र मे प्रवाहित होती है-

या अमवइती फ्रतचति

हुकइर्यात् हच बरॅजङ्.हत्

अओइ ज्रयो वोउरु-कर्षम्।। (अ सू यश्त् 3)

वैदिक सरस्वती भी पर्वत से निकलकर समुद्र मे प्रवाहित होती है-

एका चेतत् सरस्वती नदीनां शुचिर्यती गिरिभ्य आ समुद्रात्।।(ऋ० 7 97 2)

उसकी शक्ति का अनुमान तो इसी से लगाया जा सकता है कि वह अपनी शक्तिशालिनी ऊर्मियो से पर्वश्रृङ्गो तक को तोड डालती है-

इयं शुष्मेभिर्विसखा इवारुजत्

सानु गिरीणां तविषेभिरुर्मिभिः

पारावतघ्नीमवसे सुवृक्तिभिः

सरस्वतीमा विवासेम धीतिभिः।। (ऋ०6.61.2)

अवेस्ता मे अरद्वी के बारे मे वर्णन है कि उसकी सहस्रो कोशिकाये एव सहस्रों नाले है उन सब का विस्तार इतना है, जितना कि मनुष्य एक शोभनाश्व पर आरूढ होकर चालीस दिन मे सवारी कर सकता है-

येअहे हज़ड.रॅम् वइर्यनॉम्

हज़्ड.रॅम् अपघ्ज़ारनाम्।

कस्वित् च अओेषाम् अपघ्जारनॉम्

चथ्वर-सतॅम् अयर-बरनॉम्

ह्वस्पाइ नहरे बरम्नाइ।। (अ सू यश्त् 4)

वैदिक सरस्वती के बारे मे ब्राह्मणो मे उल्लेख है कि सरस्वती अपने लुप्त होने के स्थान 'विनशन' से अश्वगति से चवालीसवे दिन की दूरी पर प्लक्ष-प्रस्रवण मे पुनः आविर्भूत होती थी।[1]

अवेस्तीय अरॅद्वी सूरा अनाहित को 'अहुरत्कअेषा (असुर के नियम को मानने वाली) कहा गया है। सरस्वती को वेद मे 'असुर्या' इस विशेषण से विभूषित किया गया है-

बृहदु गायिषे वचोऽसुर्या नदीनाम् ।। (ऋ० 7 96 1)

अरॅद्वी सूरा अनाहित को अवेस्ता मे दाथ्रिश् (दान करने वाली) कहा गया है। (अ सू यश्त् 19) ऋग्वेद मे सरस्वती को 'ददिः' (देने वाली) कहा गया है-

सरस्वती वा सुभगा ददिर्वसु।। (ऋ०8 21 17)

अवेस्ता मे अरॅद्वी सूरा अनाहित सर्वोच्च अहुरमज्दा द्वारा सितारो के पार्श्व से पृथ्वी पर आगमनार्थ निवेदित हुई।

ऋग्वेद मे सरस्वती का निम्नलिखित मन्त्र मे आह्वान मिलता है जो कुछ सीमा तक उपर्युक्त अवेस्तीय प्रसड ग् से समानता रखता है-

आ नो दिवो बृहतः पर्वतादा

सरस्वती यजता गन्तु यज्ञम्।। (ऋ० 7 43 1)

अर्थात् हे पूज्या सरस्वति। तुम विस्तृत द्युलोक एव पर्वत से यज्ञ मे आने वाली बनो अथवा आओ।

अवेस्ता में अरॅद्वी सूरा अनाहिता से आह्वान के समय मार्ग निर्देशिका के रूप में प्रार्थना

---

1 चतुश्चत्वारिशदाश्वीनानि सरस्वत्या विनशनात्

प्लक्ष• प्राम्रवणः (ताण्ड्य महाब्राह्मण 25 10 16)

की गयी है- **अन बूयाो ज़वनो-सास्त** (अ सू यश्त् 11)

ऋग्वेद मे भी सरस्वती अपने भद्र उपासको को अनुष्ठान योग्य कर्म का निर्देशन करती है-

सरस्वती साधयन्ती धियं न

इडा देवी भारती विश्वतूर्तिः॥ (ऋ०2 3 8)

अवेस्ता मे अरॅद्वी सूरा अनाहित के जलो को सातो कष्वो मे व्याप्त बतलाया गया है-

अव्र्हाोस्च मे अअेवव्रहाा आपो

अपघ्ज़ारो वी-जसाइति

वीस्पाइश् अओइ कर्ष्वॉन् याइश् हप्त ॥ (अ सू यश्त् 4)

ऋग्वेद मे यद्यपि उपर्युक्त के सदृश सरस्वती के सम्बन्ध मे साक्षात् कथन नही है किन्तु सरस्वती के ऋग्वेदीय विशेषण 'सप्तथी' (सात प्रकार की) एव 'सिन्धु माता' (नदियो की जननी) से सरस्वती की भी व्यापकता के सकेत मिल जाते है-

सरस्वती सप्तथी सिन्धुमाता ॥ (ऋ० 7 36 6)

इस विवेचन से 'अरॅद्वी सूरा अनाहिता' एव 'सरस्वती' का साम्य अति सतोषप्रद रूप से सिद्ध हो जाता है। सम्भवतः दोनो नदियो की मौलिक धारणा एक ही जैसी थी किन्तु अवेस्तीय एव वैदिक-परिवेष-वैभिन्य के कारण दोनो मे वैभिन्य परिलक्षित होता है। इस विवेचन मे एक अति महत्त्वपूर्ण तथ्य और ध्यातव्य है कि दोनो नदियो मे देवशास्त्रीय दृष्टि से साम्य है। इससे यह बात सिद्ध नही होती की दोनों नदियो एक थी। हॉ इस बात से अवश्य पराङ् मुख नही हो जाया सकता कि उभय की देवशास्त्रीय पृष्ठभूमि एक ही है। वेदोत्तरकालीन साहित्य में सरस्वती की महत्ता मे कुछ ह्रास हुआ और सरस्वती जैसा महनीय पद गङ् गा की पावनता[1] के समक्ष न्यून सा हो गया किन्तु अरॅद्वी सूरा अनाहिता की महत्ता

---

1 स्रोतसामस्मि जाह्नवी (गीता)

अवेस्तोत्तरकालीन प्राचीन ईरानी साहित्य[1] मे अक्षुण्ण रही।

पह्लवी ग्रन्थो, दीनकर्त् एव बुन्देहिश्न मे उसका अनेकत्र वर्णन उपलब्ध होता है। वह अन्य यजतो तिश्तर्, सतवअेस, वोहुमनह् आदि के साथ अहुरमज्दा के वृष्टि सम्बन्धी आज्ञा का कार्यान्वयन करती है एव अतर्, वात एव दीन के साथ वृष्ट्यवरोधक दानवो का दमन करती है (दीनकर्त 3) वह नइर्यसघ से जरथुश्त्र का बीज प्राप्त करती है (बुन्देहिश्न)।

---

1 सखामनीषी शासक ऋतक्षत्र द्वितीय जो धारयत्वसु (दारयउस्) द्वितीय का पुत्र था, ने अपने शिलालेख मे, अहुरमज्दा मित्र एव अनाहिता का एक साथ स्मरण किया है-

अउरमज्दा अनहता उता मित्र माम् पातुव हचा विस्पागस्ता उत् आ

इमम् त्य अकुमा मा विजनातिय, मा विनाथयातिय

अर्थात् असुरमेधा, मित्र और अनाहिता पाप से मेरी रक्षा करे। जिसे मैने निर्मित किया उसे न कोई तोडे न विनष्ट करे।

3

मूल, संस्कृतच्छाया एवं हिन्दी-अनुवाद

3

मूल, संस्कृतच्छाया एवं हिन्दी-अनुवाद

कर्त 1

मूल- **प्रओत् अहुरो मज़्दो स्पितमाइ जरथुश्त्राइ। यज़अेष मे हीम् स्पितम् ज़रथुश्त्र यॉम् अरॅद्वीम् सूरॉम् अनाहिताम्**

पॅरथु-फ्राकाॅ बअेषज़्यॉम्

वीदअेवॉम् अहुरो - त्कअेषॉम

येस्न्यॉम् अङु.हे अस्त्वइते

वहन्यॉम् अङु.हे अस्त्वइते

आधू-फ्राधनॉम् अषओनीम्

वॉथ्वो-फ्राधनॉम् अषओनीम्

गअेथो-फ्राधनॉम् अषओनीम्

क्षअेतो-फ्राधनॉम् अषओनीम्

दञ्हु-फ्राधनॉम् अषओनीम् ।।1।।

सस्कृतच्छाया- *अब्रवीत् असुरोमेधाः श्वेतमाय जरदुष्ट्राय। यजेः मे सी श्वेततम जरदुष्ट्र याम् आर्द्रा सूराम अनाहिताम्*

पृथु-प्राञ्चिता भेषज्याम्

विदेवाम् असुर-चिकितुषीम्

यज्ञीयाम् अस्यै अस्थिवत्यै

वाश्याम् अस्यै अस्थिवत्यै

आयुःप्रवर्धिनीम् ऋतावरीम्

वास्त्वप्रवर्धिनीम् ऋतावरीम्

गयथ-प्रवर्धिनीम् ऋतावरीम्

क्षियत्-प्रवर्धिनीम् ऋतावरीम्

दस्यु-प्रवर्धिनीम् ऋतावरीम् ।।1।।

हिन्दी-अनुवाद -

अहुर मज्दा ने श्वेतमम जरथुस्त्र से कहा। हे श्वेततम। जरथुश्त्र। विस्तृत प्रसार वाली, स्वास्थ्यप्रदा, देवविरोधिनी, असुर के नियम का पालन करने वाली, इस भौतिक जगत् मे यागयोग्य, इस भौतिक जगत् मे प्रार्थना के योग्य, आयु को बढाने वाली ऋतावरी, पशुओ का सवर्धन करने वाली ऋतावरी, जीव जगत् को बढाने वाली ऋतावरी, क्षत्र को बढाने वाली ऋतावरी, देश को बढाने वाली ऋतावरी मेरी उस आर्द्रा शूरा अनाहिता का यजन करो ।।1।।

मूल-

या वीस्पनॉम् अर्ष्णॉम् क्षुतुद्रो यओज़्दधाइति

या वीस्पनॉम् हाइरिषिनॉम्

जॉथाइ गरॅवॉन् यओज़्दधाइति

या वीस्पो हाइरिषीश् हुज़ामितो दधाइति

या वीस्पनॉम् हाइरिषिनॉम्

दाइतीम् रथ्वीम् पअेम अव-बरइति ।।2।।

संस्कृतच्छाया- *या विश्वेषाम् ऋषणा क्षुद्र: योर्दधाति*

या विश्वासां हृषीणाम् (स्त्रीणाम्)

जात्यै गर्भान् योर्दधाति

या विश्वा: हृषी (स्त्री:) सुजामित: दधाति

या विश्वासा हृषीणाम् (स्त्रीणाम्)

दातिम् ऋत्वी पय: अवभरति ।।2।।

हिन्दी- अनुवाद -

जो सभी पुरुषो के वीर्य को शुद्ध करती है। जो सभी स्त्रियो के गर्भ को जननार्थ शुद्ध करती है। जो सभी स्त्रियो का सुरक्षित प्रसव कराती है अथवा जो सभी स्त्रियो को सुसन्तति से युक्त करती है। जो सभी स्त्रियो के (स्तनो मे) उचित समय पर (उचित मात्र मे) दुग्ध भरती है (मेरी उस आर्दा शूरा अनाहिता का यजन करो) ।।2।।

मूल -

मसितॉम् दूरात् फ्रसूतॉम्

या अस्ति अववइति मसो

यथ वीस्पो इमो आपो

यो ज़्मा पइति फ्रतच ॅंति

या अमवइति फ्रतचइति

हुकइर्यात् हच बरॅजङ्.हत्

अओइ ज़्रयो वोउरु-कषॅम् ।।3।।

संस्कृतच्छाया -

महतीं दूरात् प्रश्रुताम्

या अस्ति अववती महती

यथा विश्वाः इमाः आपः

याः ज्मा प्रति प्रतचन्ति

या अमवती प्रतचति

सुकर्यात् सचा बृहतः

अभि ज़्रयः उरुकक्षम् ।।3।।

हिन्दी-अनुवाद- महती, दूर तक प्रसिद्ध, जो इतनी बडी है, जितना सम्पूर्ण जल जो पृथ्वी की ओर सञ्चरित होते है (पृथ्वी पर सञ्चरित होते हैं)। जो बृहत् सुकर्य से शक्ति के साथ उरुकक्ष (वोउरु-कष) समुद्र मे प्रवाहित होती है (अर्थात् समुद्र मे गिरती है)।

मूल-

यओज़्ँति वीस्पे करनो

ज़्याइ वोउरु - कषय

आ वीस्पो मइध्यो यओज़इति

यत् हीश् अओइ फ़्रतचइति

अरॅद्वी सूर अनाहित

येञ्हे हज़ड्.रॅम् वइर्यनॉम्

हज़ड्.रॅम् अपध्ज़ारनॉम्

कस्चित्च अअेषॉम् वइर्यनॉम्

कस्चित्च अअेषॉम् अपध्ज़ारनॉम्

चथ्वरॅ-सतॅम् अयरॅ - बरनॉम्

ह्वस्पाइ नइरे बरॅम्नाइ ।।4।।

संस्कृतच्छाया-

योजन्ति विश्वे कर्णाः

ज़्याय उरुकक्षाय

आ विश्वे मध्याः योजति (योजन्ति)

यत् सीः अभि प्रतचति

यत् सीः प्रक्षरति

आर्द्रा शूरा अनाहिता

यस्याः सहस्र वार्याणाम्

सहस्रम् अपक्षाराणाम्

कश्चित् च एषां वार्याणाम्

कश्चित् च एषाम् अपक्षाराणाम्

चत्वारिशत् अयरा: वराणाम्

स्वश्वाय नराय वरिम्णे ।।4।।

हिन्दी-अनुवाद- उरुकक्ष (वोउरुकष) के सभी किनारे उफना रहे है। इसके सम्पूर्ण मध्य (भाग) उफना रहे है। जब वह वहॉ नीचे गिरती है, जब वह (वहॉ) धारारूप होती है, वह आर्द्रा शूरा अनाहिता (अरॅद्वी सूरा अनाहिता), जिसकी सहस्रो कोशिकायें, जिसके सहस्रो नाले है, उन प्रत्येक कोशिकायो, उन सभी नालो का विस्तार इतना है जितना कि मनुष्य एक शोभन अश्व पर आरूढ होकर चालीस दिन मे सवारी कर सकता है ।।4।।

मूल-

अञ्होस्च मे अऐवञ्हो आपो अपघ्जारो वी-जसाइति

वीस्पाइश् अओइ कर्ष्वान् याइश् हप्त

अञ्होस्च मे अऐवञ्हो आपो

हमथ अव-बरइति

हॉमिनॅम्च ज़यनॅम्च

हा मे आपो यओज्दधाइति

हा अर्षाम् क्षुद्रो हा क्षथ्रिनॉम् गॅरवॉन् हा क्षथ्रिनॉम् पएम ।।5।।

संस्कृतच्छाया-

अस्या: च मे एवस्वत्या: आप: अपक्षार: वि-गच्छति

विश्वान् अभि कर्ष्वान् या: सप्त

समथ अव-भरति

ऊष्माण च हायन च

सा मे आप: योंदधाति

सा ऋषणां क्षुद्रो सा स्त्रीणा गर्भान् सा स्त्रीणां पय: ।।5।।

हिन्दी-अनुवाद- मेरी इस प्रवाहयुक्त नदी से धारा सभी कर्ष्वों, जिनकी सख्या सात है के ऊपर बहती है। मेरी इस प्रवाहयुक्त नदी मे गर्मी एव शरद् मे जल सदैव भरा रहता है।। वह मेरा जल मनुष्यो के वीर्य को, वह स्त्रियो के गर्भ, वह स्त्रियो के दुग्ध को शुद्ध करता है ।।5।।

मूल-

यॉम् अज़्ॅम् यो अहुरो मज़्दो हिज़्वारॅन उज्वइरे फ़्रदथाइ

न्मानहे च वीसहे च ज़्र्ॅतॅउश्च दञ्‌हॅउश्च पाथ्राइ च हरथ्राइ च

अइव्याक्ष्त्राइच निपातयअेच निशङ्हरॅतयअे च ।।6।।

संस्कृतच्छाया-

याम् अह यो असुरः मेधा सुजवारुणा उद्भरे प्रदधाय मानस्य विशः जन्तोश्च दस्योश्च पात्राय च हरत्राय च अभ्यक्षित्राय च निपातये च निस्सहतये च ।।6।।

हिन्दी-अनुवाद-

जिसको मै जो असुर मेधा (हूँ) गृहो की, विश् की, कस्बे की, जनपद की, वृद्धि के लिए (उनकी) रखवाली, व्यवस्था (मरम्मत) देखभाल, इनकी एक साथ रखवाली एव व्यवस्था हेतु प्रबल पौरुष से नीचे लाया ।।6।।

मूल-

आअत् फ़्रषूसत् ज़रथुस्त्र

अरॅद्वी सूर अनाहित

हच दथुषत् मज़्दो।

स्रीर वा अङ्हॅन बाजव

अउरुष अस्पो स्तओयेहीश्।

फ्रा स्रीर ज़ुष सिस्पत

अउर्वइति बाजु - स्तओयेहि

अवत् मनङ्.ह मइनिम्न ।।7।।

संस्कृतच्छाया-

आत् प्रास्थात् जरदुष्ट्र

आर्द्रा शूरा अनाहिता

सचा तक्षतः मेधसः।

स्रीराः वा आसन बाहवः

अरुषः अश्वः स्थूलैः।

प्रा स्रीरा आगच्छत श्वेततम

अर्वती बाहु-स्थूलेभिः

अवत् मनसा (मनसि) मन्यमाना ।।7।।

हिन्दी-अनुवाद -

हे श्वेततम। जरदुष्ट्र। तब आर्द्रा शूरा अनाहिता निर्माता मेधा (मज्दा) के पार्श्व से प्रस्थान किया। उसके बाहु सुन्दर थे (जो) अश्व के स्कन्ध के समान घने अथवा अश्व के स्कन्ध से भी घने थे। घने हाथो से शक्तिसम्पन्न, मन मे यह सोचती हुई वह सुन्दरी आयी ।।7।।

मूल-

को मॉम् स्तवात् को यज़ाइते हओमवइतिब्यो गओमवइतिब्यो ज़ओथ्राब्यो यओज्दाताब्यो पइरि अङ्.हर्श्ताब्यो। कह्माइ अज़ॅम् उपङ्.हचयेनि हचमनाइच अनमनाइच फ़्रारङ्.हाइ हओमनङ्.हाइच ।।8।।

संस्कृतच्छाया-

कः मां स्तूयात् कः यजते सोमवतीभ्यः गोमतीभ्यः होत्राभ्यः योर्धाताभ्यः परिसृष्टाभ्यः। कस्मै अहम् उपसचै सचा-मननाय च अस्मन्मननाय च परिवेषाय च सौमनस्याय च ।।8।।

हिन्दी-अनुवाद-

कौन मेरा स्तवन करेगा? कौन मेरा सोम एव गोमास, विशुद्धीकृत एव सुनिर्मित मन्त्रो से यजन करेगा? मै किससे सम्पृक्त होऊँ? साथ सोचने के लिए, मेरा चिन्तन करने के लिए, परिवेष के लिए, सौमनस्य के लिए ।।8।।

मूल-

अहे रय ख्वरॅनड्.हच

तॉम् यज़ाइ सुरुन्वत यस्न

तॉ यज़ाइ हुयश्त यश्न

अरॅद्वीम् सूरॉम् अनाहितॉम् अषओनीम् ज़ओथ्राब्यो। अन बूयाो ज़्वनसास्त अन बूयाो हुयशततर अरॅद्वी सूर अनाहिते हओमयो-गव बरॅस्मन हिज़्वो-दड्.हड्.ह मॉथ्रच वचच श्यओश्न च ज़ओथ्राब्यस्च अर्शुख्धअेइब्यस्च वाघ्ज़िब्यो ।

येञहे हातॉम् ----------- तोस्चा यज़मइदे ।।9।।

संस्कृतच्छाया-

अस्याः रय्यै स्वर्णसे च

ता यजामि श्रवणीय यज्ञम्

ता यजामि सुयजत यज्ञम्

आर्द्रा शूराम् अनाहिताम् ऋतावरी होत्राभ्यः। अस्मान् भूयः (आ) ह्वाने शास्त अस्मान् भूयः सुयजततरा आर्द्रे शूरे अनाहिते सोमगवा वर्ष्मणा जिह्वादससा मन्त्रेण च वाचा च च्यौत्नेन च होत्राभ्यश्च ऋजूक्ताभ्यश्च वाग्भ्यः ।।9।।

हिन्दी-अनुवाद-

इसके सुनहलेपन, इसके स्वर्णस् के लिए उस ऋतावरी आर्द्रा शूरा अनाहिता के लिए श्रवणीय यज्ञ का विधान करता हूँ। सुष्ठु सम्पादित यज्ञ से उसका यजन करता हूँ। बुलाये जाने पर बार-बार हमारा निर्देशन करो। हे आर्द्रे। शूरे। अनाहिते। तुम हम लोगो के लिए सोम और गोमास, समिधा, जिह्वाचातुर्य, मन्त्र, वाक्, स्तुति एवं सरल प्रयुक्तवाणी से

बार-बार सुयजनीयतरा बनो।। 9।।

कर्त 2

मूल-

यज़अेष मे हीम् स्पितम् ज़रथुस्त्र यॉम् अरॅद्वीम् सूरॉम् अनाहितॉम् परॅथु-फ़्राकॉम् बअेषज़्यॉम्

वीदअेवॉम् अहुरो - त्कअेषॉम्

येस्न्यॉम् अजु.हे अस्त्वइते

वह्न्यॉ अङु.हे अस्त्वइते

आधू-फ़्राधनॉम् अषओनीम्

गअेथो-फ़्राधनॉम् अषओनीम्

षअेतो - फ़्राधनॉम् अषओनीम्

दञ्हु-फ़्राधनॉम् अषओनीम् ।।10।।

संस्कृतच्छाया- *यजे: मे सी श्वेततम् जरदुष्ट्र याम् आर्दा सूराम् अनाहिताम्*

पृथु - फ्राञ्चिता भेषज्याम्

विदेवाम् असुर - चिकितुषीम्

यज्ञीयाम् (यजनीयाम्) अस्मिन् अस्थिवति

ह्वानीयाम् अस्मिन् अस्थिवति

आयु:प्रवर्धिनीम् ऋतावरीम्

वास्त्व - प्रवर्धिनीम् ऋतावरीम्

गयथा - प्रवर्धिनीम् ऋतावरीम्

क्षियत् - प्रवर्धिनीम् ऋतावरीम्

दस्यु - प्रवर्धिनीम् ऋतावरीम् ।।10।।

हिन्दी-अनुवाद-

हे श्वेततम। जरदुष्ट्र। विस्तृत प्रसार वाली, स्वास्थ्यप्रदा, देवविराधिनी, असुर के नियम का पालन करने वाली, इस भौतिक जगत् मे यागयोग्य, इस भौतिक जगत् मे प्रार्थना के योग्य, आयु को बढाने वाली ऋतावरी, पशुओ का सवर्धन करने वाली ऋतावरी, जीव-जगत् को बढाने वाली ऋतावरी, क्षत्र को बढाने वाली ऋतावरी, देश को बढाने वाली ऋतावरी मेरी उस आर्द्रा शूरा अनाहिता का यजन करो ।।10।।

मूल-

या पओउर्व वाषॅम् वज़ाइते

आख़्नो द्रज़इते वाषहे

अह्न्य वाषे वज़ॅम्न

नरॅम् पइतिश्मरॅम्न

अवत् मनङ्.ह मइनिम्न।

को मॉम् स्तवात् को यज़ाइते हओमवइतिब्यो गओमवइतिब्यो ज़ओथ्राब्यो यओज़्दाताब्यो पइरि अङ्.हरश्ताब्यो। कह्माइ अज़ॅम् उपङ्.हचयेनि हच-मनाइ च अन मनाइ च फ़्राइङ्.हाइच हओमनङ्.हाइच।

अहे रय ख़्वरॅनङ्.इच

तॉम् यज़ाइ सुरुन्वत यस्न

तॉम् यजाइ हुयश्त यस्न

अरॅद्वीम् सूरॉम् अनाहितॉम् अषओनीम् ज़ओथ्राब्यो। अन बुयोा ज़वनो-सास्त अन बुयोा हुयश्ततर अरॅद्वी सूरे अनाहिते। हओमयो-गव बरॅस्मन हिज़्वो-दङ्.हङ्.ह च मॉथ्रच वचअ श्यओथ्न च ज़ओथ्राब्यस्च अरॅशुख़्धअेइब्यस्च वाघ्ज़िब्यो।।

येञ्हे हातॉम् ---------- तोस्चा यज़मइदे ।।11।।

संस्कृतच्छाया-

या पूर्व वाह वहते

आक्षाण: दृढयते वाहस्य

आस्य वाहे वहमाना (वहन्ती)

नर प्रति स्मरमाणा (स्मरन्ती)

अवत् मनसा मन्यमाना

क: मा स्त्यात् क: यजते सोमवतीभ्य: गोमतीभ्य: होत्राभ्य: योर्धाताभ्य: परिसृष्टाभ्य:। कस्मै अहम् उपसच सचा मननाय च अस्मन्मननाय च परिवेषाय च सौमनस्याय च

अस्या: रय्यै स्वर्णसे च

ता यजामि श्रवणीय यज्ञम्

ता यजामि सुयजत यज्ञम्

आर्दा शूराम् अनाहितम् ऋतावरी होत्राभ्य:। अस्मान् भूय: (आ) ह्वाने - शास्त अस्मान् भूय: सुयजततरा आर्द्रे शूरे अनाहिते सोमगवा वर्ष्मणा जिह्वादससा मत्रेण च वाचा च च्यौत्लेन च होत्राभ्यश्च ऋजूक्ताभ्यश्च वाग्भ्य: ।।11।।

हिन्दी-अनुवाद-

जो रथ को आगे बढाती है, लगाम को दृढ करती है। रथ पर बैठकर सञ्चालन करती हुई, मनुष्य के प्रति सोचती हुई, मन मे यह विचार करती हुई-

कौन मेरा यजन करेगा? कौन मेरा सोम एव गोमास, विशुद्धीकृत एव सुनिर्मित मत्रो से यजन करेगा? मै किससे सम्पृक्त होऊँ? साथ सोचने के लिए, मेरा चिन्तर करने के लिए, परिवेष के लिए, सौमनस्य के लिए।

इसके सुलहलेपन, इसके स्वर्णस के लिए उस ऋतावरी आर्द्रा शूरा अनाहिता के लिए श्रवणीय यज्ञ का विधान करता हूँ। सुष्ठु सम्पादित यज्ञ से उसका यजन करता हूँ। बुलाये जाने पर बार-बार हमारा निर्देशन करो। हे आर्द्रे। शूरे। अनाहिते। तुम हम लोगो के लिए सोम एव गोमास, समिधा, जिह्वाचातुर्य, मत्र, वाक् , स्तुति एव सरल प्रयुक्तवाणी से बार-बार

सुयजनीयतरा बनो ॥11॥

कर्त 3

मूल-

यज़अेष में हीम्... .... दञ्हु-फ़्राधनॉम् अषओनीम् ॥12॥

मूल-

येञ्हे चथ्वारो वश्तार

स्पअेत वीस्प हम-गओनोड.हो

हम नाफअेनि बॅरॅज़ ्ँत

तउर्वय ्ँत वीस्पनॉम् त्विष्वतॉम् त्बअेषो

दअेवनॉम् मश्यानॉम्च

याथ्वॉम् पइरिकानॉम्च

साथ्रॉम् कओयॉम् करॅप्नॉम् च॥

अहे रय ख्वरनड्.हच ------- अर्शुख्धअेइब्यस्च वाघ्ज्ञिब्यो॥

येञ्हे हातॉम् ------ तोस्वा यज़मइदे ॥13॥

संस्कृतच्छाया-

यस्याः चत्वारः वोढारः

श्वेताः विश्वे सम-गुणासः

सम नाभ्यः (नाभ्यानि) बृहन्तः

तुर्वन्तः द्विषताम् (द्वेषवताम्) द्वेषः

देवानां मर्त्यानाम् च

यातूनां परिकाणाम् च

शास्तृणा कवीना कृपणानाम् च

हिन्दी-अनुवाद-

जिसके चार (घोडे) खीचने वाले है (जिसके रथ को चार घोडे खीचने वाले है) सभी श्वेत, एक रग के, एक ही कुल के, लम्बे, द्वेष करने वाले सभी देवो, मर्त्यों, यातुओ, परियो, दुश्शासको, कवियो एव कृपणो के द्वेष को हिसित करने वाले है ॥13॥

कर्त 4

मूल-

यज़अेष में हीम्................ दञ्हु-फ़्राधनॉम् अषओनीम् ॥14॥

मूल- अमवइतीम् क्षोइथ्रीम् बॅरॅज़इतीम् हुरओधॉम् येञ्हे अववत् अस्नाअत्च क्षफ्नाअत्च

तातोा आपो अव-बरॅन्ते

यथ वीस्पोा इमोा आपो

योा ज़मा पइति फ़्रतचॅन्ति

या अमवइति फ़्रतचइति।

अहे रय ख़्वरॅनड्.हच ------ अर्शुख़्धअेइब्यश्च वाघ्ज़िब्यो॥

येंज़्हे हातॉम् ------- तोस्चा यज़मइदे ॥5॥

संस्कृतच्छाया-

अमवतीं छवित्रीं बृहतीं सुरोधाम् यस्याः अववत् घस्राः च क्षपाः च

तातः आपः अवभरन्ति (अवभरन्ते)

यथा विश्वाः इमाः आपः

याः ज्मां प्रति प्रतचन्ति

या अमवती प्रतचति ॥15॥

हिन्दी-अनुवाद-

बलशालिनी, चमकीली लम्बी सुशरीरा (आर्द्रा शूरा का अनाहिता का यजन करो) दिन-रात जिसकी मातृरूपिणी जलधारा बहती रहती है। जो शक्तिशालिनी प्रवाहित होती है, जितना सम्पूर्ण ये जल जो पृथ्वी पर (पृथ्वी की ओर) प्रवाहित होते हैं ।।5।।

कर्त 5

मूल-

यज़ अेष में हीम्............... दत्रहु-फ़्राधनॉम् अषओनीम् ।।16।।

मूल-

तॉम् यज़त

यो दध्वो अहुरो मज़्दो

अइर्येने बअेजहि वङ्हुयो दाइत्ययो हओमयो - गव बरॅस्मन हिज़्वोदहङ्ह मॉथ्रच वचच श्यओश्नच जओथ्राब्यस्च अरशुख्धअेइब्यस्च वाघ्ज़िब्यो ।।17।।

संस्कृतच्छाया-

ताम् अयजत

यो दाश्वान् असुरः मेधाः

आर्यायणे व्यचसि वस्व्याः दित्याः सोमगवा वर्ष्मणा जिह्वादंससा मन्त्रेण च वाचा च च्यौत्नेन होत्राभ्यश्च ऋजूक्ताभ्यः च वाग्भ्यः ।।17।।

हिन्दी-अनुवाद-

आर्यायण व्यचस् मे शोभना दिति के तट पर दाता असुरमेधा ने सोम एव गोमास, समिधा, जिह्वाचातुर्य, मत्र, वाणी, कर्म, स्तुति एव सरल प्रयुक्त वाणी से उसका (आर्द्रा शूरा अनाहिता का) यजन किया ।।17।।

मूल-

आअत् हीम् जइध्यत्

अवत् आयप्तॅम् दज़्दि मे

वडु.हि सॅविश्ते अरॅद्वी सूरे अनाहिते

यथ अज़ॅम् हाचयेने

पुथ्रम् यत् पोउरुषस्पहे

अषवनम् जरथुश्त्रॅम्

अनुमतॅअे दअेनयाइ

अनु - वरश्तअे दअेनयाइ ।।18।।

संस्कृतच्छाया-

आत् सीम् अगदत्

अवत् आप्त्य देहि मे

वस्वि श्रविष्ठे आर्द्रे सूरे अनाहिते

यथा अह सचै (सचानि)

पुत्र यत् पुर्वाश्वस्य

ऋतवन्त जरदुष्ट्रम्

अनुमतये धेनायै

अनूक्तये धेनायै

अनु - वर्ष्टये धेनायै ।।18।।

हिन्दी-अनुवाद-

उससे प्रार्थना है की- हे अच्छी सर्वाधिक कीर्तियुक्ते! आर्द्रे। शूरे! अनाहिते। मुझे वह वर दो जिससे मै पुर्वश्व के पुत्र ऋतावा जरदुष्ट्र को धर्म के बारे मे सोचने के लिए, धर्म-प्रवचन के लिए धर्माभ्यास के लिए सम्पृक्त कर सकूँ ।।18।

मूल-

दथत अह्माइ तत् अवत् आयप्तॅम् अरॅद्वी सूर अनाहित हध जओथ्रो बराइ अरद्राइ यजॅम्नाइ

जइय ॅताइ दाथ्रिश् आयप्तॅम्

अहे रय ख़्वरॅनड्‌हच ------- अरशुख़्धअेइब्यस्च वाघ्ज्रिब्यो।।

येञ्हे हातॅाम् ------- ताोस्चा यज़्मइदे ।।19।।

संस्कृतच्छाया-

अददात् अस्मै तत् अवत् आप्त्यम् आर्द्रा शूरा अनाहिता

सथ होत्रभराय ऋध्राय यजमानाय

गदते दात्री आप्त्यम् ।।19।।

हिन्दी-अनुवाद-

वरप्रदा आर्द्रा शूरा अनाहिता ने स्तोत्रोच्चारक, दानी, प्रार्थना करते यजमान को वह वर दे दिया ।।19।।

कर्त 6

मूल-

यज़अेष में हीम्............... दञ्हु-फ़्राधनॅाम् अषओनीम् ।।20।।

मूल-

तॅा यज़त

हओश्यङ्‌हो परधातो

उप उपब्दे हरयोा

सतॅम् अस्पनॅाम् अर्ष्नॅाम् हज़्ङ्‌रॅम् गवॅाम् बअेवरॅ अनुमयनॅाम् ।।21।।

संस्कृतच्छाया-

ताम् अयजत

सोष्यान्सः परधातः

उप उपब्दे हराया:

शतम् अश्वानाम् ऋषणां सहस्र गवा बेवरम् अनुमयानाम् ।।21।।

हिन्दी-अनुवाद-

परधात कुलोत्पन्न सोष्यान्स ने हरा के घेरे मे सौ वेगशाली अश्वो, एक सहस्र गायो एव दश हजार मेषो से उसका यजन किया ।।21।।

मूल-

आअत् हीम् जइध्यत्

अवत् आयप्तॅम् दज़्दि मे

वड्ड.हि सॅविश्ते अरद्वी सूरे अनाहिते

यथ अज़्ॅम उपमॅम् क्षथ्रम्

बवानि वीस्पनॉम् दख्युनॉम्

दअेवनॉम् मश्यानॉम्च

याथ्वॉम् पइरिकानामच

साथ्रॉम् कओयॉम् करफ्नॉम्च।

यथ अज़्ॅम् निजनानि

द्व थ्रिष्व माज़न्यनॉम् दअेवनॉम् वरॅन्यनॉम्च द्रवतॉम् ।।22।।

संस्कृतच्छाया-

आत सीम् अगदत्

अवत् आप्त्य देहि मे

वस्वि श्रविष्ठे आर्द्रे शूरे अनाहिते

यथा अहम् उपम क्षत्रम्

भवानि विश्वेषा दस्यूनाम्

देवाना मर्त्याना च

यातूना च परिकाणा च

शास्तृणा कवीना कृपणानाम् च

यथा अह निहनानि

द्वित्रिष्वः माजन्याना देवाना वरन्याना च द्रुह्यताम् ।।22।।

हिन्दी-अनुवाद-

इसके अनन्तर उससे याच्ञा की- हे अच्छी सर्वाधिक कीर्तियुक्ते। आर्द्रे। शूरे। अनाहिते। मुझे वह वर दो जिससे मै सभी जनपदो (देशो) देवो, मनुष्यो, यातुओ, परियो, अत्याचारियो, कवियो, कृपणो का सम्प्रभु शासक बन जाऊँ। जैसे कि मै माजन्य (माजन-निवासी) देवो,एव वरन्य (वरॅन-निवासी) द्रोहियो के दो तिहाई मार दूँ ।।22।।

मूल-

दथत् अह्माइ तत् अवत् आयप्तॅम् अरॅद्वी सूर अनाहित सध ज़ओथ्रो - बराइ अरॅद्राइ यज़ॅम्नाइ

जइध्य ॅ्ताइ दाथ्रिश् आयप्तॅम्।।

अहे रय ख्वर्नङ्हच ------ अर्शुख्धअेइब्यश्च वाघ्ज़िब्यो।।

येञ्हे हातॉम् - तोस्चा यज़मइदे ।।23।।

संस्कृतच्छाया-

अददात् अस्मै तत् अवत् आप्त्यम् आर्द्रा शूरा अनाहिता

सध होत्रभराय ऋध्राय यजमानाय

गदते दात्री आप्त्यम् ।।23।।

हिन्दी-अनुवाद-

वरप्रदा आर्द्रा शूरा अनाहिता ने स्तोत्रोच्चारक, दानी प्रार्थना करते यजमान को वह वर दे दिया। ।।23।।

कर्त 7

मूल-

यजअेष में हीम्........... ... दञ्हु-फ्राधनॉम् अषओनीम् ।।24।।

मूल-

तॉम् यज़त

यो यिमो क्षअेतो ह्वॉथ्वो

हुकइर्यात् हच बरॅज़ड्.हत्

सतॅम् अस्पनॉम् अर्ष्नॉम् हज़ड्.रॅम् गवॉम् बअेवर अनुमयानॉम् ।।25।।

संस्कृतच्छाया-

ताम् अयजत

यमः क्षियन् सुवास्त्वः

सुकर्यात् सचा बृहतः

शतम् अश्वानाम् ऋषणा सहस्र गवा बेवरम् अनुमयानाम् ।।25।।

हिन्दी-अनुवाद-

शोभन पशु वाले, शासक यम ने बृहत् सुकर्य के समीप सौ वेगशाली अश्वो, एक हजार गायो एव दस हजार मेषो से उसका यजन किया ।।25।।

मूल-

आअत् हीम् जइध्यत्

अवत् आयप्तॅम् दद्दि मे

वड्.हि सॅविश्ते अरॅद्वी सूरे अनाहिते

यथ अजॅम उपमॅम् क्षथ्रॅम्

बवानि वीस्पनॉम् दख़्युनॉम्

दऐवानॉम् मश्यानाम्च

याथ्वॉम् पइरिकानॉम्च

साथ्रॉम् कओयॉम् करफ्नॉम्च

यथ अज़ॅम् उज़्बरानि

हच दऐवऐइब्यो

उये ईश्तिश्च सओकाच

उये फ़्षओनीश्च वॉथ़्वाच

उये थ्रॉफ़्स्च फ़्रसस्तिश्च ।।26।।

संस्कृतच्छाया-

आत् सीम् अगदत्

अवत् आप्त्यं देहि मे

वस्वि आर्द्रे शूरे अनाहिते

यथा अहम् उपम क्षत्रम्

भवानि विश्वेषां दस्यूनाम्

देवाना मत्यानां च

यातूना परिकाणां च

शास्तृणा कवीना कृपणानां च

यथा अहम् उद्भराणि सचा देवेभ्यः

उभे इष्टिश्च शोकाः च

उभे क्षोणीश्च वास्त्वाः च

उभे तृप्तिश्च प्रशस्तिश्च ।।26।।

हिन्दी-अनुवाद-

इसके बाद उससे याच्या की - हे अच्छी। सर्वाधिक कीर्तिशालिनि। आर्द्रे। शूरे। अनाहिते। मुझे वह वर दो जिससे मै सभी जनपदो, (देशो) देवो, मनुष्यो, यातुओ परियो, अत्याचारियो, कवियो, कृपणो का सम्प्रभु शासक बन जाऊॅं। जैसे मै, देवो से उनके धन एव कल्याण दोनो, पीनता एव पशु समूह दोनो, तृप्ति एव प्रशस्ति दोनो छीन सकूॅं ।।26।।

मूल-

दथत् अह्माइ तत् अवत् आयप्तॅम् अरॅद्वी सूर अनाहित हध ज़ओथ्रो -बराइ

अरॅद्राइ यजम्नाइ

जइध्य ॅ्ताइ दाथ्रिश् आयप्तॅम्।।

अहे रय ख़्वरनङ्.हच ------- अर्॒शुख्धअेइब्यस्च वाघ्ज़िब्यो।।

येञ्हे हातॉम् ------ तोस्चा यज़मइदे ।।27।।

संस्कृतछाया-

अददात् अस्मै तत् अवत् आप्त्यम् आर्द्रा शूरा अनाहिता सध होत्रभराय

ऋध्राय यजमानाय

गदते दात्री आप्त्यम् ।।27।।

हिन्दी-अनुवाद-

वरप्रदा आर्द्रा शूरा अनाहिता ने स्तोत्रोच्चारक, दानी प्रार्थना करते यजमान को वह वरदान दे दिया ।।27।।

कर्त 8

मूल-

यज़अेष में हीम्............... दञ्हु-फ़्राधनॉम् अषओनीम् ।।28।।

मूल-

तॉम् यजत

अज़िश् थ्रिज़फो दहाको

बवूरोइश् पइति दञ्हओवे

सतम् अस्पनॉम् अर्ष्नॉम् हज़ड.रॅम् गवॉम् बअेवर अनुमयनॉम् ।।29।।

संस्कृतच्छाया-

ताम् अयजत

अहि: त्रिजृम्भण: दासक:

बावेरौ प्रति दस्यौ

शतम् अश्वानाम् ऋषणा सहस्र गवा बेवरम् अनुमयानाम् ।।29।।

हिन्दी-अनुवाद-

तीन मुख वाले अहि दासक (आजीदहाक) ने बावेरु देश मे सौ वेगशाली अश्वो, एक सहस्र गायो एवं सहस्र मेषो से उसका यजन किया ।।29।।

मूल-

आअत् हीम् जइध्यत्

अवत् आयप्तॅम् दद्दि मे

वड्.हि सॅविश्ते अरॅद्वी सूरे अनाहिते यथ अज़ॅम् अमश्यॉ कॅरॅवानि वीस्पाइश् अओइ कर्ष्वॉन् याइश् हप्त ।।30।।

संस्कृतच्छाया-

आत् सीम् अगदत्

अवत् आप्त्यं देहिमे

वस्वि श्रविष्ठे आर्द्रे शूरे अनाहिते यथा अहम् अमर्त्यान् करवाणि विश्वान् अभिकृष्वान् याः (ये) सप्त ।।30।।

हिन्दी- अनुवाद-

इसके बाद उससे याच्ञा की- हे अच्छी। सर्वाधिककीर्तियुक्ते। आर्द्रे। शूरे। अनाहिते। मुझे वह वर दो जैसे मै समग्र कृष्वो की जो सात है, (जिनकी सख्या सात है) को मानवरहित कर दू ।।30।।

मूल-

नोइत् अह्माइ दथत् तत् अवत् आयप्तम् अरॅद्वी सूर अनाहित।

अहे रय ख़्वरनङ्.ह ------- अर्शुख़्धअेइब्यस्च वाघ्जिब्यो।।

येञ्हे हातॉम् ------ तोस्च यज़मइदे ।।31।।

संस्कृतच्छाया-

नेत् अस्मै अददात् तत् अवत् आप्त्यम् आर्द्रा शूरा अनाहिता ।।31।।

हिन्दी-अनुवाद-

आर्द्रा शूरा अनाहिता ने उसे वह वर नही दिया ।।31।।

कर्त 9

मूल-

यज़अेष में हीम्.... .... दञ्हु-फ़्राधनॉम् अषओनीम् ।।32।।

मूल-

तॉ यज़त

वीसो पुथ्रो अश़्व्यानोइश्

वीसो सूरयो थ्रओतओनो

उप वरॅनॅम् चथ्रु-गओषॅम्

सतॅम् अस्पनॉम् अरष्नॉम् हज़ड्.रॅम् गवॉम् बअेवर अनुमयनॉम् ।।33।।

संस्कृतच्छाया-

ताम् अयजत

विशः पुत्र आप्त्यायनिः

विशः सूरायाः त्रैतानः

उप वरण चतुर्धोषम्

शतम् अश्वानाम् ऋषणा सहस्र गवा बेवरम् अनुमयानाम् ।।33।।

हिन्दी-अनुवाद-

उसका विशःपुत्र, शूरवशी आप्त्य (आथ्व) कुलोत्पन्न त्रैतान (थ्रअेतओन) ने चतुष्कोण वरण (वरॅन्-घेरा) के समीप सौ वेगशाली अश्वो, एक सहस्र गायो, दश हजार मेषो से यजन किया ।।33।।

मूल-

आअत् हीम् जइध्यत्

अवत् आयप्तॅम् दज़्दिमे

वङु.हि सॅविश्ते अरॅद्वी सूरे अनाहिते

यत् बवानि अइवि-वन्यो अज़ीम् दहाकॅम्

थ्रिज़फनॅम् थ्रिकमॅरॅधॅम्

क्ष्वश्-अषीम् हज़ड.र-यओक्ष्तीम्

अशओजड्.हॅम् दअेवीम् द्रुजॅम्

अघॅम् गअेथाब्यो द्रवॅ्तॅम्

यॉम् अशओजस्तॅमॉम् द्रुजॅम्

फ्रच् कॅरॅ्तत् अङ्रो मइन्युश्

अओइ यॉम् अस्त्वइतीम् गअेथॉम्

मह्र्काय अषहे गअेथनॉम्।

उत हे व्ॅत अज़ानि

सङ्हवाचि अरनवाचि

योइ हॅन कॅह्र्प स्रअेश्त ज़्ज़ाइतॅअे गअेथ्याइ ते योइ अब्दोतॅमे ।।34।।

संस्कृतच्छाया-

आत् सीम् अगदत्।

अवत् आप्त्य देहिमे

वस्वि श्रविष्ठे आद्रे शूरे अनाहिते

यत् भवानि अभिवन्यः अहि दासकम्

त्रिजृम्भण त्रिकमूर्धानम्

षडक्ष सहस्रयुक्तिम् अत्योजसम्

दैवी द्रुहम् अघ गयथाभ्यः द्रुह्यन्तम्

याम् अत्योजस्तमा द्रुह प्राक् अकृन्तत् अहुरो मन्युः

अभियाम् अस्थिवती गयथाम्

मर्काय ऋतस्य गयथानाम्

उत अस्य वनिते अजानि

शंसवाचि अर्णवाचि

ये अनया कृपा श्रेष्ठे जात्यै गयथायै ते ये अद्भुततमे ।।34।।

हिन्दी-अनुवाद-

उसने उससे (शूरा अनाहिता से) याच्या की - हे अच्छी। सर्वाधिक कीर्तियुक्ते। शूरे। अनाहिते। मुझे वह वर दो कि तीन मुखवाले, त्रिशिरा, सहस्रयुक्तियो वाले, अत्याधिक बलशाली, द्रोहयुक्त, पापी, जीव-जगत् के प्रति द्रोह-युक्त सबसे अधिक ओजस्वी द्रुह् को शरीरिजगत् के विरोध मे, ऋत-जगत् के विनाश के लिए पहले ही अहुरमन्यु ने बनाया, उस अजी दहाक को मार सकूँ और उसकी दो वनिताओ, सङ्हवाचि और अरॅनॅवाचि को मुक्त कर सकूँ, जो शारीरिक सौन्दर्य मे स्त्रियो मे श्रेष्ठ है और जीव-जगत् मे सर्वाधिक अद्भुत है ।।34।।

मूल-

दथत् अह्माइ तत् अवत् आयप्तॅम् अरद्वी सूर अनाहित हथ जओथ्रोबराइ अरॅद्राइ यजॅम्नाइ

जइध्य ॅताइ दाथ्रिश् आयप्तॅम्।।

अहे रय ख़्वरॅनङ्हच अरशुख़्धअेइब्यस्च वाघ्ज़िब्यो।।

येञ्हे हातॅाम् ------- ताोस्चा यज़मइदे ।।35।।

संस्कृतच्छाया-

अददात् अस्मै तत् अवत् आप्त्यम् आर्द्रा शूरा अनाहिता सध होत्रभराय

ऋध्राय यजमानाय

गदते दात्री आप्त्यम् ।।35।।

हिन्दी-अनुवाद-

वरप्रदा अरॅद्वी सूरा अनाहिता ने स्तोत्रोच्चारक, दानी, प्रार्थना करते यजमान को वह वर दे दिया ।।35।।

कर्त 10

मूल-

यज़्अेष मे हीम् स्पितम ज़रथुश्त्र यॉम अरॅद्वीम् सूरॉम् अनाहितॉम्

पॅरॅथु - फ्राकॉम् बअेषज़्यॉम्

वीदअेवॉम् अहुरो त्कअेषॉम्

येस्न्यॉम् अङ्.हे अस्त्वइते

वहम्यॉम् अङ्.हे अस्त्वइते

आधू - फ़्राधनॉम् अषओनीम्

वाथ्वो - फ्राधनॉम अषओनीम्

गअेथो - फ्राधनॉम् अषओनीम्

क्षअेतो - फ्राधनॉम् अषओनीम्

दञ्हु - फ्राधनॉम् अषओनीम् ।।36।।

संस्कृतच्छाया-

यजेः मे सीम् श्वेततम जरदुष्ट्र याम् आर्द्रां शूराम् अनाहिताम्

पृथुप्राञ्चिता भेषज्याम्

विदेवाम् असुर - चिकितुषीम्

यज्ञीयाम् अस्मिन् अस्थिवति

ह्वानीयाम् अस्मिन् अस्थिवति

आयुःप्रवर्धिनीम् ऋतावरीम्

वास्त्व - प्रवर्धिनीम् ऋतावरीम्

गयथा - प्रवर्धिनीम् ऋतावरीम्

क्षियत् - प्रवर्धिनीम् ऋतावरीम्

दस्यु - प्रवर्धिनीम् ऋतावरीम् ।।36।।

हिन्दी-अनुवाद-

हे श्वेततम्। जरथुस्त्र। विस्तृत प्रसारवाली, स्वास्थ्यप्रदा, देवविरोधिनी, असुर के निमय का पालन करने वाली, इस भौतिक जगत् मे याग योग्य, इस भौतिक जगत् मे प्रार्थना के योग्य, आयु को बढाने वाली ऋतावरी पशुओ का सवर्धन करने वाली ऋतावरी, जीव-जगत् को बढाने वाली ऋतावरी, क्षत्र को बढाने वाली ऋतावरी मेरी उस अरॅद्वी सूरा अनाहिता का यजन करो ।।36।।

मूल-

तॉम् यज़त

नइरे-मनो कॅरॅसास्पो

पस्ने वरोइश् पिषिनङ्.हो

सतॅम् अस्पनॉम् अर्ष्नॉम् हज़ङ्.रॅम् गवॉम् बअेवर अनुमयानॉम् ।।37।।

संस्कृतच्छाया-

ताम् अयजत

(नरमनाः) नृमनाः कृशाश्वः

पृष्ठे वरेः पिषनसः

शतम् अश्वानाम् ऋषणा सहस्र गवा बेवरम् अनुमयानाम् ।।37।।

हिन्दी-अनुवाद-

वीर कृशाश्व ने उसका (शूरा अनाहिता का) वरोइ पिषिनह् के पीछे सौ वेगशाली अश्वो, एक सहस्र गायो एव दस हजार मेषो से यजन किया ।।37।।

मूल-

आअत् हीम् ज़इध्यत्

अवत् आयप्तॅम् दज़्दि मे

वङु.हि सॅविश्ते अरॅद्वी सूरे अनाहिते

यत् बवानि अइवि - वन्याो

ग ॅद्रॅवॅ़न यिम् ज़इरि - पाष्नॅम्

उप यओजॅ ॅत करन

ज्रय वोउरु - कषय

आतचानि सूरॅम् न्मानॅम्

द्र्वतो यत् पथनयोा

स्करॅनयाो दूरएपारयोा ।।38।।

संस्कृतच्छाया -

आत् सीम् अगदत्

अवत् आप्त्य देहि मे

वस्वि श्रविष्ठे आर्द्रे सूरे अनाहिते

यत् भवानि अभिवन्यः

गन्धर्वान् यं हरिपार्ष्णम्

उप युध्यन्त ज्रयः उरुकक्षस्य

आतचानि शूर धाम

द्रुह्यतः यत् प्रथनायाः

स्कीर्णायाः दूरेपारायाः ।।38।।

हिन्दी-अनुवाद-

उसने (कृशाश्व ने) उससे याच्ञा की - हे अच्छी। सर्वाधिक कीर्तियुक्ते। आर्द्रे। शूरे। अनाहिते। मुझे वह वर दो कि मै स्वर्णिम एडी वाले, युद्ध करने वाले, हिसक, गन्धर्व को उरुकक्ष नदी के समीप पराजित कर सकूॅ तथा द्रोही के अभेद्य गृह पर पहुॅच सकूॅ, विस्तार मे फैली हुई पृथ्वी पर जिसकी सीमा बहुत दूर है ।।38।।

मूल-

दथत् अह्माइ ततू अवतू आयप्तॅम् अरद्वी सूर अनाहित हध ज़ओथ्रो - बराइ अरॅद्राइ यज़ॅम्नाइ

जइध्य ॅतॉइ दाथ्रिश् आयप्तम् ॥

अहे रय ख़्वरॅनङ्हच ------- अर्‌शुख़्धअेइब्यस्च वाघ्ज़िब्यो॥

येञ्हे हातॉम् ------- ताोस्चा यजमइदे ।।39।।

संस्कृतच्छाया-

अददात् अस्मै तत् अवत् आप्त्यम् आर्द्रा शूरा अनाहिता सध होत्रभराय

ऋध्राय यजमानाय

गदते दात्री आप्त्यम् ।।39।।

हिन्दी-अनुवाद-

वरप्रदा अरॅद्वी सूरा अनाहिता ने स्तोत्रोच्चारक, दानी, प्रार्थना करते यजमान को वह वर दे दिया ।।39।।

कर्त 11

मूल-

यज़अेष मे हीम्........ ..... . दञ्हु-फ़्राधनॉम् अषओनीम् ।।40।।

मूल-

तॉम् यज़त

मइर्यो तूइर्यो फ़्रङ्.रसे

ह ॅ्कइने पइति अञ्हाो जमो

सतॅम् अस्पनॉम् अर्ष्नॉम् हज़ङ् रॅम् गवॉम् बअेवरॅ अनुमयनॉम् ।।41।।

संस्कृतच्छाया-

ताम अयजत

मर्यः तूर्यः प्राङ रस्यः

सञ्चयने प्रति अस्याः ज्मायाः

शतम् अश्वानाम् ऋषणा सहस्र गवा बेवरम् अनुमयानाम् ।।41।।

हिन्दी-अनुवाद-

मारक, तूरानवासी फ्रङ्रस्यान ने इस पृथ्वी के नीचे, गह्वर मे सौ वेगशाली अश्वो, एक हजार गायो एवं दस हजार मेषो से उसका यजन किया ।।41।।

मूल-

आअत् हीम् जइध्यत्

अवत् आयप्तॅम् दद्धि मे

वङु.हि सॅविश्ते अरॅद्वी सूरे अनाहिते

यथ अज़ॅम् अवत् ख़्वरॅनो

अपयेमि उग्रॅम् यिम् वजइते

मइधीम् व्रयङ्.हो वोउरु - कषहे

यतू अस्ति अइर्यनॉम दख़्युनॉम्

ज़ातनॉम् अज़ातनॉमच

यतूच अषओनो जरथुश्त्रहे ॥42॥

संस्कृतच्छाया-

आत् सीम् अगदत्

अवत आप्त्य देहि मे

वस्वि आर्द्रे शूरे अनाहिते

यत् अहम् अवत् स्वरण.

आपयामि य वजते

मध्य व्रयसः उरुकक्षस्य

यत् अस्ति आर्याणां दस्यूनाम्

जातानाम् अजातानाम् च

यत् ऋतवतः जरदुष्ट्रस्य ॥42॥

हिन्दी-अनुवाद-

तत्पश्चात् (फ्रङ्‌रस्यान ने) उससे याच्ञा की - हे अच्छी, सर्वाधिककीर्तियुक्ते। आर्द्रे। शूरे। अनाहिते। मुझे वह वर दो, जिससे मै उस वैभव को लेकर भाग जाऊॅ, जो उरुकक्ष सागर के मध्य मे लहरा रहा है और जो आर्यजनो का है। जो उत्पन्न या अनुत्पन्न (आर्यजनो) और जो ऋतपालक जरथुश्त्र का है ॥42॥

मूल-

नो इतू अह्माइ दधत् ततू आयप्तॅम् अरॅद्वी सूर अनाहित॥

अहे रय ख़्वरॅनङ्.हच -------- अर्शुख़्धेअेब्यस्च वाघ्ज़िब्यो॥

येञहे हाताँम् ------- तोस्चा यजमइदे ॥43॥

संस्कृतच्छाया-

नेत् अस्मै अददात् तत् अवत् आप्त्यम् आर्द्रा शूरा अनाहिता ।।43।।

हिन्दी-अनुवाद-

अरॅद्वी सूरा अनाहिता ने उसे वह वर नही दिया ।।43।।

कर्त 12

मूल-

यजअेष में हीम् ----- दञ्हु-फ्राधनॉम् अषओनीम् ।।44।।

मूल-

तॉम् यज़त

अउर्वो अश् - वरॅचो कव उस

अॅरॅज़िफ्यात् पइति गरोइतू

सतॅम् अस्पनॉम् अर्ष्नॉम् हज़ड्.रॅम् गवॉम् बअेवरॅ अनुमयनॉम् ।।45।।

संस्कृतच्छाया-

ताम् अयजत्

अर्वा ऋतवर्चः कव उसः

ऋजिप्यात् प्रति गिरेः

शतम् अश्वानाम् ऋषणा सहस्र गवा बेवरम् अनुमयानाम् ।।45।।

हिन्दी-अनुवाद-

उसका (अरॅद्वी सूरा अनाहिता का) गतिशील, ऋतशक्तिसम्पन्न कव उस ने ऋजीप्य पर्वत से सौ गतिशील अश्वो, एक सहस्र गायो एवं दश सहस्र मेषो से यजन किया।।45।।

मूल-

मूल- आअत् हीम् जइध्यत्

अवत् आयप्तॅम् दद़्दि मे

वडु.हि सॅविश्ते अरॅद्वी सूरे अनाहिते

यथ अज़॔म् उपॅमॅम् क्ष्थ्रॅम्

बवानि वीस्पनॉम् दख़्युनॉम्

दअेवनॉम् मश्यानॉम् च

याथ्वॉम् पइरिकानॉम्च

साथ्रॉम् कओयॉम् करफ़्नॉम्च ।।46।।

संस्कृतच्छाया-

आत् सीम् अगदत्

अवत् आप्त्य देहि मे

वस्वि श्रविष्ठे आर्द्रे शूरे अनाहिते

यथा अहम् उपमं क्षत्रम्

भवानि विश्वेषा दस्यूनाम्

देवानां मर्त्यानां च

यातूनां परिकाणा च

शास्तृणा कवीना कृपणाना च ।।46।।

हिन्दी-अनुवाद-

उसने उससे याच्ञा की - हे अच्छी। सर्वाधिक कीर्तिवाली आर्द्रे। शूरे। अनाहिते। मुझे वह वर दो जिससे मै सभी जनपदो (देशो) देवों, मनुष्यो, यातुओ, परियों, अत्याचारियो, कवियों, कृपणो का सम्प्रभु शासक बन जाऊँ ।।46।।

मूल-

मूल-

दथत् अह्माइ तत् अवत् आयप्तॅम् अरॅद्वी सूर अनाहित हथ ज़ाओथ्रोबराइ अरॅद्राइ यजम्नाइ

जइध्य ॅताइ दाथ्रिश् आयप्तॅम् ॥

अहे रय ख़्वरॅनङ्.हच ------- अरशुख़्धअेइब्यस्च वाध्ज़िब्यो॥

येञ्हे हातॅाम् ------ ताोस्चा यज़मइदे ॥47॥

संस्कृतच्छाया-

अददात् अस्मै तत् अवत् आप्त्यम् आर्द्रा शूराअनाहिता सध होत्रभराय

ऋध्राय यजमानाय

गदते दात्री आप्त्यम् ॥47॥[1]

हिन्दी-अनुवाद-

वरप्रदा आर्द्रा शूरा अनाहिता ने स्तोत्रोच्चारक, दानी प्रार्थना करते यजमान को वह वर दे दिया ॥47॥

कर्त 13

मूल-

यजअेष मे हीम् ----- दञ्हु-फ्राथनॉम् अषओनीम् ॥48॥

मूल-

तॉम् यज़त

अर्ष अइर्यनॉम् दख़्युनॉम्

क्षथ्राइ ह ॅकॅरॅमो हओस्रव

पस्ने वरोइश् चअेचिस्तहे

जफ़्हे उर्वापहे

सतॅम् अस्पनॉम् अर्ष्नॉम् हज़ड्.रॅम् गवॉम् बअेवरॅ अनुमयनॉम् ।।49।।

संस्कृतच्छाया-

ताम् अयजत

ऋष। आर्याणा दस्यूनाम्

क्षत्राय समकर्ता सुश्रवा:

पृष्ठे वरस्य चेचिस्तस्य

गभ्रस्य उर्वापस्य

शतम् अश्वानाम् ऋषणा सहस्र गवा बेवरम् अनुमयानाम् ।।49।।

हिन्दी-अनुवाद-

वीर, शासन के लिए आर्य देशो को एक करने वाले, सुश्रवस् ने गहरे, प्रभूतजलवाले चेचिस्ज झील के पीछे सौ गतिशील अश्वो, एक सहस्र गायो एव दस सहस्र मेषो से उसका (आर्द्रा शूरा अनाहिता का) यजन किया ।।49।।

मूल-

आअत् हीम जइध्यत्

अवत् आयप्तॅम् दज़्दि मे

वड्.हि सॅविश्ते अरॅद्वी सूरे अनाहिते

यथ अजम् उपॅमॅम् क्षथ्रम्

बवानि वीस्पनॉम् दख्युनॉम्

दअेवानॉम् मश्यानॉम्च

याथ्वॉम् पइरिकनॉम्च

साथ्रॉम् कओयॉम् करप़्नॉम्च।

यत् वीस्पनॉम् युख़्तनॉम्

अज्ञम् फ्रतॅमॅम्थ ॅजयेनि

अन चरॅतॉम् यॉम् दरॅघॉम्

नव फ्राथ्वॅरॅसाम् रजुरॅम्

यो मॉम् मइर्यो नुरम् मनो

अस्पएषु पइति परॅतत ।।50।।

संस्कृतच्छाया-

आत् सीम् अगदत्

अवत् आप्त्य देहि मे

वस्वि श्रविष्ठे आर्द्रे शूरे अनाहिते

यथा अहम् उपम क्षत्रम्

भवानि विश्वेषा दस्यूनाम्

देवाना मर्त्याना च

यातूना परिकाणा च

शास्तृणा कवीना कृपणाना च

यत् विश्वेषा युक्तानाम्

अह प्रथम तञ्चयानि

अञ्जः चरता या दीर्घाम्

नव प्रत्वरसा रजुरम्

यो मा मर्यः नूर मनः

अश्वेषु प्रति अपृतत् ।।50।।

हिन्दी-अनुवाद-

उससे याञ्चा की- हे अच्छी, सर्वाधिक कीर्तियुक्ते। आर्द्रे। शूरे। अनाहिते मुझे

वह वर दो जिससे मै सभी जनपदो (देशो), देवो, मनुष्यो, यातुओ, परियो, अत्याचारियो, कवियो और कृपणो का सम्प्रभु शासक बन जाऊँ। जैसे कि मै सभी युक्तो मे प्रथम् आऊँ। जो मनुष्य नूलमनाः (नये मन वाला) मेरे विरुद्ध घोडे पर (चढकर) लडता है, वह शीघ्रातिशीघ्र दीर्घ एव घने जगल मे (पराजित होकर) भाग जाय ।।50।।

मूल-

दथत् अह्माइ तत् अवत् आयप्तॅम् अरॅद्वी सूर अनाहित हध जओथ्रो-बराइ अरॅद्राइ यज़ॅम्नाइ

जइध्य ॅताइ दाथ्रिश् आयप्तॅम् ॥

अहे रय ख़्वरॅनङ्हच ------ अर्शुख़्धअेइब्य वाघ्निब्यो ।।50।।

संस्कृतच्छाया-

अददात् अस्मै तत् अवत् आप्त्यम् आर्द्रा शूरा अनाहिता सध होत्र - भराय ऋध्राय यजमानाय

गदते दात्री आप्त्यम् ।।51।।

हिन्दी-अनुवाद-

वरप्रदा आर्द्रा शूरा अनाहिता ने स्तोत्रोच्चारक, दानी प्रार्थना करते यजमान को वह वर को दे दिया ।।51।।

कर्त 14

मूल-

यजअेष में हीम् ----- दअहु-फ्राधनॉम् अषओनीम् ।।52।।

मूल-

तॉम् यज़त

तख्मो तुसो रथअेश्तारो

बरॅषअेषु पइति अस्पनॉम्

ज्ञावरॅ जइध्य ॅतो हितअेइब्यो

द्रवतातॅम् तनुब्यो

पोउरु - स्पक्ष्तीम् त्बिष्य ॅतॉम् पइति - जइतीम् दुश्मन्युनॉम् हथ्रा-निवाइतीम् हमॅरॅथनॉम् अउर्वथनॉम् त्विष्य ॅतॉम् ॥53॥

संस्कृतच्छाया-

ताम् अयजत

तक्ष्मः तुसः रथेष्ठः

वृषेषु प्रति अश्वानाम्

जावर (जवः) गदमानः हितेभ्यः

ध्रुवतातिम् तनुभ्यः

पुरुस्पष्टि द्वेषवता प्रतिजीति दुर्मन्यूना सत्रा-निवाति समरथानाम् उरुवास्तूना द्वेषवताम् ॥53॥

हिन्दी-अनुवाद-

वीर श्रेष्ठ रथी तुस ने घोडो के पीठ पर (बैठकर) सम्बन्धियो के लिए शक्ति, शरीरो के लिए दीर्घजीवन, द्वेषियो को देखने के लिए प्रभूत - दृष्टि, शत्रुओ पर विजय, एक जैसे रथ पर आरुढ़ शत्रुओ एवं वृहदावास वाले द्वेषियो के एक साथ विनाश की प्रार्थना करते हुए उसका यजन किया ॥53॥

मूल-

आअत् हीम् जइध्यत्

अवत् आयप्तॅम् दज्दि मे

वङु्हि सॅविश्ते अरॅद्वी सूरे अनाहिते

यत् बवानि अइवि् - वन्यो

अउर्व हुनवो वअेसकय

उप द्वरॅम् क्षथ्रो - सुकॅम्

अपनोतॅमॅम् कङ्.हय

बॅरॅज़ॅ्तय अषवनय

यथ अज़ॅम् निजनानि

तूइर्यनाँम् दख़्युनाँम्

पँ्चसघ्नाइ सतघ्नाइश्च

सतघ्नाइ हज़ङ्.रघ्नाइ

हज़ङ्.रघ्नाइ बअेवरॅघ्नाइश्च

बअेवरॅघ्नाइ अहाँक्ष्तघ्नाइश्च ।।54।।

संस्कृतच्छाया-

आत् सीम् अगदत्

अवत् आप्त्यं देहि मे

वस्वि श्रविष्ठे आद्रे शूरे अनाहिते

यत् भवानि अभिवन्य

अर्वा सूनवः बेसकाय

उप द्वारं क्षत्र - सुकम्

अपनुततमं कङ्.हयाः

बृहत्याः ऋतावर्याः

यथा अहं निहनानि

तूर्याणां दस्यूनाम्

पञ्चाषद्घ्नाय शतघ्नाय च

शतघ्नाय सहस्रघ्नाय च

सहस्रघ्नाय बेवरघ्नाय

बेवरघ्नाय असंख्यातघ्नाय च ।।54।।

हिन्दी-अनुवाद-

इसके बाद उससे याच्ना की - हे अच्छी! सर्वाधिक कीतियुक्ते! आर्द्रे! शूरे! अनाहिते! मुझे वह वर दो जिससे मै वेसक (वअेसक) के वीर पुत्र को विशाल, ऊँचे, पवित्र, कङ्.हा के उपर स्थित क्षत्र - सुक (क्षथ्रो-सूक) द्वारा पर पराजित कर सकूँ। जिससे मैं तुरान देशवासियों के पचास को मारने के लिए और सौ को मारने के लिए, सौ को मारने के लिए और हजार को मारने के लिए, एक हजार को मारने के लिए एवं दस हजार को मारने के लिए, दस हज़ार को मारने के लिए एवं असंख्यों को मारने के लिए पहुँच सकूँ ।।54।।

मूल-

दथत् अह्माइ तत् अवत् आयप्तॅम् अरॅद्वी सूर अनाहित हध ज़ओथ्रो - बराइ अरॅद्राइ यज़ॅम्नाइ

जइध्य ँताइ दाथ्रिश् आयप्तॅम्।।

अहे रय ख़्वरॅनङ्.हच ----- अर्शुख्धअेइब्यस्च वाघ्न्रिब्यो।।

येञ्हे हाताँम् ----- तोस्चा यज़मइदे ।।55।।

संस्कृतच्छाया-

अददात् अस्मै तत् अवत् आप्त्यम् आर्द्रा शूरा अनाहिता सध होत्रभराय

ऋध्राय यजमानाय

गदते दात्री आप्त्यम् ।।55।।

हिन्दी-अनुवाद-

वरप्रदा आर्द्रा शूरा अनाहिता ने स्रोत्रोच्चारक, दानी, प्रार्थना करते यजमान को उस वर को दे दिया ।।55।।

मूल-

यजअेष में हीम् ----- दञ्हु-फ्राधनॉम् अषओनीम् ।।56।।

मूल-

ताँम् यज़ॅ ँत

अउर्व हुनवो वअेसकय

उप ूदरँम् क्षथ्रो - सुकम्

अपनोतॅमॅम कङ्.हय

बॅरॅज़ ँतय अषवनय

सतॅम् अ॰॰॰ाँ अरॅष्नाँम् हज़ङ्.रॅम् गवाँम् बअेवरॅ अनुमयनाँम् ।।57।।

संस्कृतच्छाया-

ताम् अयजन्त

अर्वा सूनव: वेसकाय

उप द्वारं क्षत्र - सुकम्

अपनुततमं कङ्.हाया:

बृहत्या: ऋतावर्या:

शतम् अश्वानाम् ऋषणां सहस्रं गवां बेवरम् अनुमयानाम् ।।57।।

हिन्दी-अनुवाद-

वेसक के वीर पुत्रों ने विशाल, पवित्र कङ्.हा के ऊपर (स्थित) क्षत्र-सुक द्वार के पास उसका यजन किया ।।57।।

मूल–

आअत् हीम् जइध्यॅन्

अवत् आयप्तॅम् दज़्दि नो

वङु.हि सॅविश्ते अरद्वी सूरे अनाहिते

यत् बवाम् अइवि - वन्योा

तख्मॅम् तुसॅम् रथअेश्तरॅम्

यथ वअेम् निजनाम्

अइर्यनाँम् दख़्युनॉम्

प ॅचसघ्नाइ सतघ्नाइश्च

सतघ्नाइ हज़ड्.रघ्नाइ च

हज़ड्.रघ्नाइ बअेवरघ्नाइच

बेअवरघ्नाइ अहाँक्ष्तघ्नाइश्च ।।58।।

संस्कृतच्छाया–

आत् सीम् अगदन्

अवत् आप्त्यं देहि मे

वस्वि श्रविष्ठे आर्द्रे शूरे अनाहिते

यत् भवाम अभिवन्या:

तक्ष्मं तुसं रथेस्थातारम् (रथेष्ठम्)

यथा वयं निहनाम

आर्याणां दस्यूनाम्

पञ्चाषदघ्नाय शतघ्नाय च

शतघ्नाय सहस्रघ्नाय च

सहस्रघ्नाय बेवरघ्नाय च

बेवरघ्नाय असंख्यातघ्नाय च ।।58।।

हिन्दी-अनुवाद-

इसके अनन्तर उससे प्रार्थना की - हे अच्छी! सर्वाधिककीर्तियुक्ते! आर्द्रे! शूरे! अनाहिते! मुझे (हमें) वह वर दो जिससे हम वीर रथी तुस (तख़्म तुस) को पराजित करने वाले होवें। जिससे मैं आर्य देशों के पचास को मारने के लिए एवं सौ को मारने के लिए, सौ को मारने के लिए एवं हजार को मारने के लिए, हजार को मारने के लिए एवं दस हजार को मारने के लिए, दस हजार को मारने के लिए एवं असंख्यों को मारने के लिए पहुँच सकूँ।।58।।

मूल-

नोइत् अऐइब्यस्चित् दथत् तत् अवत् आयप्तॅम् अरॅद्वी सूर अनाहित।

अहे रय ख़्वरॅनङ्हच ------- अर्शुख़्धअेइब्यस्च वाध्ज्ञिब्यो।।

येञ्हे हाताँम् ------ तोस्चा यज़मइदे ।।59।।

संस्कृतच्छाया-

नेत् एभ्यः चित् अददात् तत् अवत् आप्त्यम् आर्द्रा शूरा अनाहिता ।।59।।

हिन्दी-अनुवाद-

आर्द्रा शूरा अनाहिता ने उनको वह वर नहीं दिया ।।59।।

कर्त 16

मूल-

यजअेष में हीम् ----- दञ्हु-फ्राधनॉम् अषओनीम् ।।60।।

मूल-

ताँम् यज़त

पउर्वो यो विफ़्रो नवाज़्रो

यत् दिम् उस्च उज्द्वाँनयत्

वॅरॅथ्रजो तख्मो थ्रअेतओनो

मॅरॅघहे कॅहॅर्प कह्र्कासहे ।।61।।

संस्कृतच्छाया-

ताम् अयजत

पूर्व्यः यः विप्रः नवाजः

यत् तम् उच्चैः उदधूनयत्

वृत्रघ्नः (वृत्रहा) तक्ष्मः त्रैतानः

मृगस्य कृपः कराकसस्य ।।61।।

हिन्दी-अनुवाद-

प्राचीन विप्र नवाज (विफ़्रो नवाज) ने उसका यजन किया जिसे शत्रुहन्ता, वीर त्रैतान ने एक पक्षी के रूप में ऊपर हवा में फेंक दिया ।। 61।।

मूल-

हो अवथ वज़त

थ्रिअरॅम् थ्रिक्षपरॅम्

पइतिश् न्मानॅम् यिम् ख़्वापइथीम्

नोइत् अओर अवोइरिस्यात्

थ्रओश्त क्षफ़्नो थ्रित्ययो

फ़्राध्मत् उषोाङ्.हॅम् सूरयो वीवइतीम्

उप उषोाङ्.हॅम् उप ज़्बयत्

अरॅद्वीम् सूराँम् अनाहितॉम् ।।62।।

संस्कृतच्छाया-

सः अवथा अवहत

त्रि-अयरं (त्र्ययरम्) त्रिक्षपाः

प्रति मानं यं स्वापत्यम्

नेत ओरम् अवार्त्स्यत

त्रस्तः क्षपाः तृतीयायाः

प्रागमत् उषसं सूरया विभातीम्

उप उषसं उपाह्वयत्

आर्द्रा शूराम् अनाहिताम् ।।62।।

हिन्दी-अनुवाद-

वह तीन दिन एवं तीन रात अपने स्वामित्व वाले गृह की ओर उद्रता रहा किन्तु वह तृतीय रात्रि की समाप्ति पर नीचे नहीं लौट सका तब वह किरणों से प्रकाशमान उषा के पास पहुँचा। उसी के समीप उसने आर्द्रा शूरा अनाहिता का आह्वान किया ।।62।।

मूल-

अरॅद्वी सूरे अनाहिते

मोषु मे जब अवड्.हे

नूरॅम् मे बर [illegible]

हज़ड्.रॅम् ते अज़ॅम् ज़ओथ्रनाँम् [illegible] गओअवइतिनाँम् यओज़्दातनाँम् पइरि - अड्.हर्श्तनाँम् बरानि अओइ आपम् याम् रड्.हाँम्

येज़ि जूम् [illegible]पयमि

अओइ ज़ाँम् अहुरधाताँम्

अओइ न्मानॅम् यिम् ख़्वापइथीम् ।।63।।

संस्कृतच्छाया-

आर्द्रे शूरे अनाहिते

मक्षु मे जव अवसे

नुरं मे भर उपस्थाम्

सहस्रं ते अहम् होत्राणां होमवतीनां गोमतीनां योर्दधतां परिसृष्टानां भराणि अभि आपं (आपः) यां रसाम्

यदि जीवं प्राप्स्यामि

अभि ज्माम् असुरहिताम्

अभि मानं यं स्वापत्यम् ।।63।।

हिन्दी-अनुवाद-

हे आर्द्रे! शूरे! अनाहिते! मेरी सहायता के लिए शीघ्र दौड़ो। मुझे तुरन्त सहायता दो। मै तुम्हे सुनिर्मित, असंस्पृष्ट सोम एवं गोमांस युक्त सहस्रों आहुतियाँ रसा के तट पर अर्पित करूँगा यदि मै असुर निर्मित पृथ्वी पर स्थित अपने स्वामित्व वाले गृह पहुँचता हूँ ।।63।।

मूल-

उप-तचत् अरॅद्वी सूर अनाहित

कइनीनो कॅह्रूप स्रीरयाो

अश् - अमयाो हुरओधयाो

उस्कात् यास्तयाो अॅरॅज़्वइथ्याो

रअेवत् चिथ्रॅम् आजातयाो

निज़ॅँग अओथ्र पइतिश्मुख़्त

ज़रन्यो - उर्वीक्ष्न बाम्य ।।64।।

संस्कृतच्छाया-

उपातचत् आर्द्रा शूरा अनाहिता

कनीनाया: कृपा स्रीराया:

अत्यमाया: सुरोधाया:

उच्चात् यस्ताया: ऋजुवत्या:

रेवत् चित्रम् आजाताया:

निजघनम् अवत्रं प्रतिमुक्तम्

हिरण्य-उर्वीक्ष्ण: भाम्य: ।।64।।

हिन्दी-अनुवाद -

आर्द्रा शूरा अनाहिता उसके पास सुशरीरा, अतिशक्तिशालिनी, लम्बी शरीर वाली, विशुद्ध सारल्योपेता, सुकुलोद्भवा, ऐड़ी तक सोपानत्का, सुनहले एवं चमकीले गहनों को पहने हुए कन्या के रूप में गयी ।।64।।

मूल-

हा हे बाज़व गॅउर्वयत्

मोषु ततू आस् नोइतू दरॅघॅम्

यतू फ़्रायतयतू श़्वक्ष़ॅम्नो

अओइ न्मानॅम् यिम् ख़्वापइथीम्

द्रूम् अव ँतॅम् अइरिश्तम्

हमथ यथ परचितू ।।65।।

संस्कृतच्छाया-

सा अस्य बाहौ अगृभ्णात्

मक्षु तत् आस नेत् दीर्घम्

यत् प्रायतत् त्वरयाणः (त्वक्षमाणः)

अभि ज्माम् असुरहिताम्

अभि मानं यं स्वापत्यम्

ध्रुवम् अवन्तम् अरिष्टम्

समथ यथा परिचित् ।।65।।

हिन्दी-अनुवाद-

उसने (शूरा अनाहिता ने) उसे अपनी बाहुओं में जकड़ लिया। यह (कार्य) शीघ्र हुआ (इसमें) विलम्ब नहीं हुआ। वह वेग से असुर निर्मित पृथ्वी, पर अपने घर पहुँचा जैसा पहले हमेशा, दुरुस्त, सुरक्षित एवं अहिंसित ।।65।।

मूल-

दथत् अह्माइ तत् अवत् आयप्तॅम् अरॅद्वी सूर अनाहित ज़ओथ्रो-बराइ अरॅद्राइ यज़ॅम्नाइ

जइध्य ँताइ दाथ्रिश् आयप्तॅम्।।

अहे रय ख़्वरॅनङ्हच ----- अर्शुख्धअेइब्यस्य वाध्नि ब्यो।।

येञ्हे हाताँम् ------ तास्चा यजमइदे ।।66।।

संस्कृतच्छाया-

अददात् अस्मै तत् अवत् आप्त्यम् आर्द्रा शूरा अनाहिता सध होत्र - भराय ऋध्राय यजमानाय

गदते दात्री आप्त्यम् ।।66।।

हिन्दी-अनुवाद-

वरप्रदा आर्द्रा शूरा अनाहिता ने स्तोत्रोच्चारक, दानी, प्रार्थना करते यजमान को वह वर दे दिया ।।66।।

मूल-

यजअेष में हीम् ----- दञ्हु-फ्राधनॉम् अषओनीम् ।।67।।

मूल-

ताँ यज़त जामास्पो

यत् स्पाधॅम् पइरि - अवअेनत्

दूरात् अय ॅ्तॅम् रस्मओयो

द्र्वताँम् दअेवयस्ननाँम्

सतॅम् अस्पनाँम् अर्ष्नाँम् हज़ड्.रॅम् गवॉम् बअेवरॅ अनुमयनाँम् ।।68।।

संस्कृतच्छाया-

ताम् अयजत यमदश्व:

यत् स्पृधं परि-अवेनत (पर्यवेनत्)

दूरात् आयन्तं रस्मायाम्

द्रुह्यतां देवयज्ञानाम्

शतम् अश्वानाम् ऋषणां सहस्रं गवां बेवरम् अनुमयानाम् ।।68।।

हिन्दी-अनुवाद-

यमदश्व (जामास्प) ने उसका सौ वेगशाली अश्वों, एक सहस्र गायों, दश सहस्र मेषों से यजन किया। जब उसने युद्ध में दूर से आती हुई द्रोहियों एवं देवोपासकों की सेना को भलीभाँति देखा ।।68।।

मूल-

आअत् हीम् जइध्यत्

अवत् आयप्तॅम् दज़्दि मे

वङु.हि सॅविश्ते अ़रॅद्वी सूरे अनाहिते

यथ अज़ॅम् अवथ वॅरॅथ्र हचाने

यथ वीस्पे अन्ये अइरे ।।69।।

संस्कृतच्छाया-

आत् सीम् अगदत्

अवत् आप्त्यं देहि मे

वस्वि श्रविष्ठे आद्रे शूरे अनाहिते

यथा अहम अवथ वृत्रहा (वृतघ्नः) सचै

यथा विश्वे अन्ये आर्याः ।।69।।

हिन्दी-अनुवाद-

एतदनन्तर उससे प्रार्थना की- हे अच्छी! सर्वाधिक कीर्तियुक्ते! आर्द्रे! शूरे! अनाहिते मुझे वह वर दो जिससे जैसे अन्य सम्पूर्ण आर्य उसी प्रकार मैं भी सदैव शत्रुओं का हन्ता होऊँ ।।69।।

मूल-

दथतु अह्माइ ततु अवतु आयप्तॅम् अरॅद्वी सूर अनाहित हध ज़ओथ्रो-बराइ अरॅद्राइ यज़ॅम्नाइ

जइध्य ॅ्ताइ दाथ्रिश आयप्तम्।।

अहे रय ख़्वरॅनङ्.हच ------ अर्शुख़्धअेइब्यस्न वाघ्ज़िब्यो।।

येञ्हे हातॉम् ----- तोस्चा यज़मइदे ।।70।।

संस्कृतच्छाया-

अददात् अस्मै तत् अवत् आप्त्यम् आर्द्रा शूरा अनाहिता सध होत्र-भराय ऋध्राय यजमानाय

गदते दात्री आप्त्यम् ।।70।।

हिन्दी-अनुवाद -वरप्रदा आर्द्रा शूरा अनाहिता ने स्तोत्रोच्चारक दानी, प्रार्थना करते यजमान को वह वर दे दिया ।।70।।

कर्त 18

मूल-

यजअेष में हीम् ----- दञ्हु-फ्राधनॉम् अषओनीम् ।।71।।

मूल-

ताँम् यज़्ँअषवज़्दो पुथ्रो पोउरुधाक्तोइश् अशवज़्दस्च थ्रितस्च सायुज्द्रोइश् पुथ्र उप बॅरॅज़्ँतम् अहुरम् क्षथ्रीम् क्षअेतॅम् अपाँम् नपातॅम् अउर्वतू - अस्पॅम् सतॅम् अस्पमाँम् अर्ष्नॉम् हज़ड्.रम् गवाँम् बअेवरॅ अनुमयनाँम् ।।72।।

संस्कृतच्छाया-

ताम् अयजन्त ऋतवृद्धः पुत्रः पुरुधाक्तस्य ऋतवृद्धश्च त्रितश्च सायुज्द्रस्य पुत्रः बृहन्तं तम् असुरं क्षत्रियं क्षियन्तम् अपां नपातम् अर्वदश्वं शतम् अश्वानाम् ऋषणां सहस्रं गवां बेवरम् अनुमयानाम् ।।72।।

हिन्दी-अनुवाद-

उसका पुरुधाक्त-पुत्र ऋतवृद्ध, ऋतवृद्ध एवं सायुज्द्र-पुत्र त्रित ने सौ वेगशाली अश्वों, एक सहस्र गायों, दश सहस्र मेषों से विशाल, असुर, क्षत्रियों के शासक, वेगशाली अश्वों वाले अपां नपात् के पास यजन किया ।।72।।

मूल-

आअत् हीम् जइध्यन्।

अवत् आयप्तम् दज़्दि नो

वड्.हि [illegible] अरॅद्वी सूरे अनाहिते यतू बवाम अइविन्वन्यो।

दानवो तूर व्याख़्न

करॅम्च असबनॅम् वरॅम्च असबनॅम्

त ँ्चिश्तॅम्च दूरअेकअेतॅम्

अह्मि गअेथे पॅषनाहु ।।73।।

संस्कृतछाया-

आत् सीम् अगदत्

अवत् आप्त्यं देहि नः

वस्वि श्रविष्ठे आर्द्रे शूरे अनाहिते यत् भवाम अभिवन्याः

दानवान् तूरस्य व्याखनम्

करं च अश्ववनं वरं च अश्ववनम्

तञ्चिष्ठं दूरेकेतम्

अस्मिन गयथे पृतनासु ।।73।।

हिन्दी-अनुवाद-

इसके पश्चात् उससे याच्ञा की - हे अच्छी! सर्वाधिककीतिशालिनि! आर्द्रे! शूरे! अनाहिते! मुझे वह वर दो जिससे तूरानवासी दानवों को इकट्ठा करने वाले अश्ववन (करॅ असबॅन) एवं वर अश्ववन् (वरॅ असबनॅ) एवं सर्वाधिक शक्तिशाली दूरेकेत (दूरअेकअेत) को इस संसार के युद्ध में परास्त कर सकूँ। ।।73।।

मूल-

दथत् अअेइब्यस्चित तत् अवत् आयप्तॅम् अरॅद्वी सूर अनाहित

हध ज़ओथ्रो-बराइ अरॅद्राइ यजॅम्नाइ

जइध्य ँ्ताइ दाथ्रिश् आयप्तम्।।

अहे रय ख़्वरॅनड्.हच ------ अर्शुख्धअेइब्यस्च वाघ्ज्रिब्यो।

येञ्हे हाताँम् ------ तोस्चा यज़मइदे ।।74।।

संस्कृतछाया-

अददात् एभ्यःचित् तत् अवत् आप्त्यम् आर्द्रा शूरा अनाहिता

सध होत्र-भराय ऋध्नाय यजमानाय

गदते दात्री आप्त्यम् ।।74।।

हिन्दी-अनुवाद-

स्तोत्रोच्चारक, दानी, प्रार्थना करते यजमान के लिए वरप्रदा आर्द्रा शूरा अनाहिता ने इनको (ऋतवृद्धादि को) वह वर दे दिया ।।74।।

कर्त 19

मूल-

यजअेष में हीम् ----- दत्र्हु-फ्राधनॉम् अषओनीम् ।।75।।

मूल-

ताँम् यज़त

विस्तउरुश् यो नओतइर्याँनो

अॅरॅज़ुख़्धात हच वचङ्हत्

उइति वचॅबिश् अओजनो ।।76।।

संस्कृतव्याख्या-

ताम् अयजत

विस्तुरुः यः नौतरायणः

उप आपं (आपः)यां वितस्ताम्

ऋजूक्तात् सचा वचसः

उत वचोभिः ऊचानः।।76।।

हिन्दी-अनुवाद-

नौतर (नओतर) के पुत्र विस्तरु (विस्तउरु) ने वितस्ता के जल के पास सरलता से बोली गयी वाणी से उसका इस प्रकार कहते हुए यजन किया।।76।।

मूल-

ता बा अष ता अर्शुख़्ध

अरॅद्वी सूरे अनाहिते

यत् मे अववत् दअेवयस्ननाँम् निजतॅम्

यथ सारॅम् वर्सनाँम् बरामि।

आअत् मे तूम् अरॅद्वी सूरे अनाहिते

हुश्कॅम् पॅषुम् रअेचय

तरो वड्.हीम् वीतड्.हइतीम् ।।77।।

संस्कृतच्छाया-

तद् भूतम् ऋतं तद् ऋजूक्तम्

आर्द्रे सूरे अनाहिते

यत् मे अववत् देवयज्ञानां निहतम्

यथा शिरः (शिरसि) वर्ष्मणां भरामि

आत् मे त्वम् आर्द्रे शूरे अनाहिते

शुष्कं पन्थानं रेचय

तराय वस्वीं वितस्ताम् ।।77।।

हिन्दी-अनुवाद-

वह सत्य हुआ, वह सही बोला गया। मैने देवोपासकों को इतना मारा जितना मै अपने सिर में बाल धारण करता हूँ। हे आर्द्रे! शूरे! अनाहिते! अब तुम मेरे लिए मार्ग को सूखा बना दो, जिससे मैं अच्छी वितस्ता को पार कर सकूँ। ।।77।।

मूल-

उप-तचत् अरॅद्वी सूर अनाहित

कइनीनो कॅहर्प स्रीरयो

अश–अमयाो हुरओधयाो

उस्कात् यास्तयाो ॲरॅज़्वइथ्योा

रअेवत् चिथ्रम् आजातयाो

ज़रन्य अओथ्र पइतिश्मुख़्त

या वीस्पो पीस बाम्य

अरॅमअेश्ताो आपो कॅरॅनओत्

फ्ऱष अन्याो फ्ऱताचयत्

हुश्कॅम् पॅषुम् रअेचयत्

तरो वङु.हीम वितङु.हइतीम् ।।78।।

संस्कृतच्छाया।–

उपातचत् आर्द्रा शूरा अनाहिता

कनीनायाः कृपा स्रीरायाः

अत्यमायाः सुरोधायाः

उच्चात् यस्तायाः ऋजुवत्याः

रेवत् चित्रम् आजातायाः

हिरण्यम् अवत्रं प्रतिमुक्ता

या विश्वा पेशांसि भाम्या

रमिष्ठाः अन्याः आपः अकृणोत्

प्राक् अन्याः प्रातचयत्

शुष्कं पन्थानम् अरेचयत्

तराय वस्वीं वितस्ताम् (वितस्वतीम्)।।78।।

हिन्दी- अनुवाद-

आर्द्रा शूरा अनाहिता उसके पास सुशरीरा, अति शक्तिशालिनी, लम्बेशरीरवाली, उपरिबद्धा, विशुद्ध सारल्योपेता, ऐश्वर्यशालिकुल में उत्पन्न, स्वर्णिम जूते एवं सभी प्रकार के चमकने वाले अलकंरणों को पहने हुए कन्या के रूप में गयी। उसने जल के एक भाग को स्थिर कर दिया और एक भाग को आगे बहा दिया। अच्छी वितस्ता को पार करने के लिए सूखा मार्ग बना दिया ।।78।।

मूल-

दधतू अहमाइ ततू अवतू आयप्तॅम् अरॅद्वी सूर अनाहित हध ज़ओथ्रो-बराइ अरॅद्राइ यज़ॅम्नाइ

जइध्य ँताइश् दाथ्रिश् आयप्तम्॥

अहे रय ख़्वरॅनङ्.हच ----- अर्शुख्धइेइब्यस्च वाघ्ज़िब्यो॥

येञ्हे हाताँम् ------ ताोस्चा यज़मइदे ।।79।।

संस्कृतच्छाया-

अददात् अस्मै तत् अवत् आप्त्यम् आर्द्रा शूरा अनाहिता सध होत्र-भराय ऋध्राय यजमानाय

गदते दात्री आप्त्यम् ।।79।।

हिन्दी-अनुवाद-

वरप्रदा आर्द्रा शूरा अनाहिता ने स्तोत्रोच्चारक, दानी प्रार्थना करते यजमान को वह वर दे दिया। ।।79।।

कर्त 20

मूल-

यजअेष में हीम् ----- दञ्हु-फ्राधनॉम् अषओनीम् ।।80।।

मूल-

ताँम् यज़त

योइश्तो यो प्र्यननाँम्

पइति पॅद्वअेपॅ रङ्.हयाो

सॅतम् अस्पनाँम् अर्श्नाँम् हज़ङ्.रॅम् गवाँम् बअेवरॅ अनुमयनाँम् ।।81।।

संस्कृतच्छाया-

ताम् अयजत

यविष्ठः प्रियाणाम्

प्रति द्वीपं रसाया

शतम् अश्वानाम् ऋषणां सहस्रं गवां बेवरम् अनुमयानाम् ।।81।

हिन्दी-अनुवाद-

प्रेयान्कुलीय यविष्ठ ने रसा के द्वीप में सौ वेगशाली अश्वों, एक सहस्र गायों एवं दश सहस्र मेषो से में उसका यजन किया ।।81।।

मूल-

आअत् हीम् जइध्यत्

अवत् आयप्तॅम् दज़्दि मे

वङु.हि सॅविश्ते अरॅद्वी सूरे अनाहिते

यत् बवानि अइवि़ - वन्योा

अख़्तीम् दुज़्दॅम् तॅमङ.हु ँतॅम्

उत हे फ़्रष्न पइति-प्रवाने नवच नवइतीम्च खुज़्द्रनाँम् त्वअेषोपर्श्तनाँम् यत् माँम् पॅरॅसत् अख्यो दुज़्दो तॅमङु.हो ।।82।।

संस्कृतच्छाया-

आत् सीम् अगदत्

अवत् आप्त्यं देहि मे

वस्वि श्रविष्ठे आर्द्रे शूरे अनाहिते

यत् भवानि अभिवन्यः

अख्त्यं (यक्षम्) दुर्धियं तमस्वन्तम्

उत अस्य प्रश्वान् प्रति-ब्रवाणि नवम् च नवतिम् च सुदृढानां द्वेषपृष्टानां यत् माम् अपृच्छत् अख्त्यः (यक्षः) दुर्धीः तामसः ॥82॥

हिन्दी-अनुवाद-

इसके पश्चात् उससे प्रार्थना की-हे अच्छी! सर्वाधिक कीर्तियुक्ते! आर्द्रे! शूरे! अनाहिते! मुझे वह वर दो जिससे मैं दुर्बुद्धि तामसिक अख्त्य को जीत सकूँ और उसके द्वेषवश पूँछे गये निन्यानबे प्रश्नों का उत्तर दे सकूँ, जिसे दुष्ट, तामस अख्त्य ने मुझसे पूँछा है॥82॥

मूल-

दथत् अह्माइ तत् अवत् आयप्तॅम् अरॅद्वी सूर अनाहित हध ज़ओथ्रो-बराइ अरॅद्राइ यज़ॅम्नाइ

जइध्य ॅताइश् दाथ्रिश् आयप्तॅम्॥

अहे रय ख़्वरॅनङ्हच ------- अर्शुख़्धअेइब्यो वाघ्ज़िब्यो ॥

येञ्हे हाताँम् ---------- तोास्वा यज़मइदे ॥83॥

संस्कृतच्छाया-

अददात् अस्मै तत् अवत् आप्त्यम् आर्द्रा शूरा अनाहिता सध होत्रभराय

ऋध्राय यजमानाय

गदते दात्री आप्त्यम् ॥83॥

हिन्दी-अनुवाद-

वरप्रदा आर्द्रा शूरा अनाहिता ने स्तोत्रोच्चारक, दानी प्रार्थना करते यजमान को वह वर दे दिया ।।83।।

कर्त 21

मूल-

यजअेष में हीम् ----- दञ्हु-फ्राधनॉम् अषओनीम् ।।84।।

मूल-

यह्म्य अहुरो मज़्दो

ह्वपो निवअेधयत्

आइधि पइति अव-जस

अरॅद्वी सूरे अनाहिते

हच अवत्ब्यो स्तॅरॅब्यो

अओइ जाँम् अहुरधाताँम्

थ्वाँम् यजो ँते अउर्वोड.हो

पुथ्रोड्.हो दञ्हु-पइतिनाँम् ।।85।।

संस्कृतच्छाया-

यस्याः असुरः मेधाः

स्वपो न्यवेदयत्

एहि प्रति-अवगच्छ

आर्द्रे शूरे अनाहिते

सचा अवद्भ्यः स्तृभ्यः

अभि ज्याम् असुरहिताम्

त्वाम् यजन्ते अर्वास:

असुरास: दस्यु-पतय:

पुत्रास: दस्युपतीनाम् ।।85।।

हिन्दी-अनुवाद-

जिसको सुकर्मा असुर मेधा ने आज्ञा दी (निवेदन किया) आओ हे आर्द्रे! शूरे! अनाहिते! तुम उन सितारों के पास से असुर द्वारा स्थापित पृथ्वी पर आओ। वीर अथवा महान् असुरधर्मा देश के स्वामीगण, देशस्वामियों के पुत्र लोग तुम्हारी पूजा करते हैं ।।85।।

मूल-

थ़्वाँम् नरचित् योइ तख़्म

जइध्याो ॅ्ते आसु-अस्पीम्

ख्वरॅनङ्.हस्च उपरतातो

थ़्वाँम् आथ्रवनो मरम्नो

आथ्रवनो थ्रायओनो

मस्तीम् जइध्याो ॅ्ते स्पानॅम्च

वॅरॅथ्रघ्नॅम्च अहुरधातॅम्

वनइ ॅ्तीम्च उपरतातॅम् ।।86।।

संस्कृतच्छाया-

त्वां नरश्चित् ये तक्ष्मा:

गदन्ते आश्वश्वं

स्वर्णश्च उपरितता:

त्वाम् अथर्वाण: स्मरमाणा:

अथर्वण: त्रामणा:

मतिं गदन्ते श्वानञ्च

वृत्रघ्नं च असुरहितम्

वनितिं च उपरितातम् ।।86।।

हिन्दी-अनुवाद-

वीर मानव जन तुमसे शीघ्रगामी अश्व सर्वोच्च ऐश्वर्य माँगते हैं। अध्ययनरत पुरोहित एवं पुरोहितों के शिष्य तुमसे ज्ञान, सुख, असुरनिर्मित शत्रुहन्तृत्व और सर्वोच्च विजय माँगेंगें ।।86।।

मूल-

थ्व़ाँम् कइनिनो वध्रे यओन

क्ष़थ्र ह्वापो जइध्यो ँते

तख़्मॅम्च न्मानो-पइतीम्।

थ्व़ाँम् चराइतिश् जि़ज़नाइतिश्

जइध्यो ँते हुज़ामीम्।

तूम् ता अऐइब्यो क्ष़यम्न

निसिरिनवाहि अरॅद्वी सूरे अनाहिते ।।87।।

संस्कृतच्छाया-

त्वम् कनीनाः वर्धियोन्यः

क्षत्रं स्वापः गदन्ते

तक्ष्मं दम्पतिम्

त्वाम् चरातीः (चिरण्टीः) जनयन्तीः

गदन्ते सुजामिम्

त्वम् ताः क्षयमाणा

निश्रृण्वसि आर्द्रे शूरे अनाहिते ।।87।।

हिन्दी अनुवाद-

शुभ कर्म करने वाली, वन्धयायोनि वाली कन्यायें तुसमें शासनसम्बद्ध वीर पति का वर मॉगती है (माँगेगी)। सद्यः प्रसवा स्त्रियां तुमसे सुन्दर सन्तान मॉगती हैं (माँगेगी)। हे आर्द्रे! शूरे! अनाहिते! समर्थ होती हुई तुम वह सब उनका देती हो (दे दोगी) ।।87।।

मूल-

आअत् फ्रषुषत् जरथुश्त्र

अरद्वी सूर अनाहित

हच अवत्र्यो स्तॅरॅब्यो

अओइ जाँम अहुरधाताँम् ।।88।।

संस्कृतच्छाया-

आत् प्रैषित् जरदुष्ट्रम्

आर्द्रा शूरा अनाहिता

सचा अवद्भ्य स्तृभ्यः

अभिज्माम् असुरहिताम् ।।88।।

हिन्दी-अनुवाद-

इसके पश्चात् आर्द्रा शूरा अनाहिता उन सितारों के पास से असुर निर्मित पृथ्वी पर जरदुष्ट्र के पास आयी ।।88।।

मूल-

आअत् अओख़्त् अरॅद्वी सूर अनाहित।

अॅरॅज़्वो अषाउम् स्पितम्

थ्वाँम् दथत् अहुरो मज़्दो

रतूम् अस्त्वइथ्यो गअेथयो।

माँम् दथत् अहुरो मज़्दो।

नीपाथ्रीम् वीस्पयो अषओनो स्तोइश्। मन रय ख़्वनॅरङ्‌हच पस्वस्च स्तओराच उपइरि ज़्ाँम् वीचरॅँत [illegible] बिज़्ँग्र। अज़ॅम् बोइतू तूम् ता निपयेमि वीस्प वोहू मज़्दधात अषचिथ्र माँनयॅन् अहे यथ पसूम् पसु वस्त्रम् ॥89॥

संस्कृतच्छाया-

आत् अवोचत् आर्द्रा शूरा अनाहिता

ऋज्व: ऋतवन्तं श्वेतम्

त्वाम् अदधात् असुरो मेधा:

ऋतुम् अस्थिवत्या: गयथाया

माम् अदधात् असुर: मेधा:

निपात्रीं विश्वस्य ऋतवत: सृष्टे:। मम रम्या स्वर्णसा च पशवश्च स्थूराश्च उपरि ज्यां विचरन्ति मर्त्याश्च द्विजघना: अहम् वेद्मि त्वम् ता (नि) निपाययामि विश्वा (नि) वसू (नि) मेधाहिता (नि) ऋतचित्रा (णि) मानयन् यथा पशुं पशु-वास्त्रम् ॥89॥

हिन्दी-अनुवाद-

इसके पश्चात् आर्द्रा शूरा अनाहिता ने ऋतावा जरदुष्ट्र से कहा- हे सरल! (जरदुष्ट्र) असुरमेधा ने तुम्हें इस भौतिक जगत के नियमन के लिए स्थापित किया है। असुरमेधा ने मुझे सम्पूर्ण ऋतयुक्त सृष्टि की रक्षिका बनाया है। मेरी चमक एवं मेरे ऐश्वर्य से दो पैरों वाले मनुष्य, पशुगण, पशुओं के झुण्ड पृथ्वी पर चलते हैं। मै सभी अच्छी वस्तुएं जो मेधा द्वारा निर्मित हैं एवं ऋत से उत्पन्न है, त्वदर्थ उनको जानती हूँ एवं उनकी रक्षा करती हूँ, जैसे कोई गड़ेरिया अपने पशुओं और चारागाह की रक्षा करता है ॥89॥

मूल-

पइति दिम् पॅरॅसत् ज़रथुश्त्रो अरॅद्वीम् सूरॉ अनाहिताँम्।

अरॅद्वी सूरे अनाहिते

कन श्वाँम् यस्न यजाने

कन यस्न फ़्रायज़ेने

यसॅ-तव मज़्दाो कॅरॅनओत् तचर अॅंतरॅ अरॅथॅम् उपइरि ह्वरॅक्षअ़ेतॅम् यसॅ थ्वा नोइत् अइवि- द्रुज़्ोाॅते अज़िश्च अरॅथ्नाइश्च ववज़काइश्च वरॅन्वाइश्च वरॅनव वीषाइश्च ।।90।।

संस्कृतच्छाया-

प्रति ताम् अपृच्छत् जरदुष्ट्रः आर्द्रा शूराम् अनाहिताम्।

आर्द्रे शूरे अनाहिते

केन त्वां यज्ञेन यजानि

केन त्वां यज्ञेन प्रयजानि

यत्-तव मेधाः कृणोतु तचरम् अन्तरम् अरथम् उपरि स्वरक्षेत्र यत् त्वां नेत् अभिद्रुहन्ते आहिश्च ऋत्नैश्च विवाजकैश्च वृणवद्भिः विषैश्च ।।90।।

हिन्दी-अनुवाद-

जरदुष्ट्र ने आर्द्रा शूरा अनाहिता से प्रश्न किया- हे आर्द्रे! शूरे! अनाहिते! मै तुम्हारी किस यज्ञ से पूजा करूॅं। किस यज्ञ से अच्छी तरह यजन करूँ, ताकि असुर मेधा तुम्हे नीचे की ओर गतिशील बनाये, ताकि तुम्हे सूर्य के ऊपर स्थित (स्वर्ग) में (जाने के लिए) प्रेरित न करे। साँप तुम्हे ऋत्न, विवाजक एवं घातक विष से क्षति न पहुँचायें ।।90।।

मूल-

आअत् अओख़्त अरॅद्वी सूर अनाहित।

अॅरॅज़्वो अषाउम् स्पितम

अन माँम् यस्न यज़अेष

अन यस्न फ़्रयज़अेष

हच हू वक्षात् आ हू फ़्राष्मो-दातोइत्। आ तू मे अअेतयोा ज़ओथ्रयोा फ्रड्. हरोइश् आथ्रवनो पर्श्तो-वचड्.हो पइति-पर्श्तो-सवड्.हो माज़्दो हधहुनरो तनु-माँथ्रो ।।91।।

संस्कृतच्छाया-

आत् अवोचत् आर्द्रा शूरा अनाहिता

ऋज्वः ऋतवन्तं श्वेततमम्

अनेन मां यज्ञेन यजेः

अनेन यज्ञेन प्रयजेः

सचा सूर्यः (स्वर्) वक्षात् आ सूर्यः प्रोष्मधाता। आ त्वं मे (एतया होत्रया) एतायाः होत्रायाः प्रस्वर अथर्वणः पृष्टवचः प्रतिपृष्टश्रवः सध-सुनरः तनुमन्त्रः ।।91।।

हिन्दी-अनुवाद-

इसके अनन्तर आर्द्रा शूरा अनाहिता ने ऋतसम्पन्न, सरल श्वेततम् (स्पितम-श्वेततमकुलोत्पन्न) जरदुष्ट्र से कहा- मुझे इस यज्ञ से पूजो। मुझे इस यज्ञ से अच्छी तरह पूजों जब सूर्य निकलता है तब तक जबकि वह अस्त होता है (सूर्योदय से सूर्यास्त तक तुझे पूजो, यह भाव है) तुम मेरे इस होत्र का पान करो (क्योंकि तुम) अथर्वा, पृष्टवचस् (वाणी के बारे में पूछने वाले) एवं प्रतिपृष्टश्रवम् (कीर्ति के बारे में पूंछने वाले) गुणवान् मंत्र-विग्रह हो ।।91।।

मूल-

मा मे अऐतयो ज़ओथ्रयो फ़्ड्.हरॅँतु हरॅतो मतफ़्तो मद्रुश्तो मसचिश् मकस्वीश् मस्त्री मदह्मो अस्रावयत्-गाथो मपअेसो यो वीतॅरॅतो-तनुश् ।।92।।

संस्कृतच्छाया-

मा मे एतया होत्रया (एतायाः होत्रायाः) प्रस्वरन्तु ह्वरन् मा तप्तः मा द्रुग्धः मा कस्विः मा स्त्री मा दस्मः अश्रावयद्गाथः मा पेशः वितृततनुः ।।92।।

हिन्दी-अनुवाद-

कोई शत्रु, कोई ज्वरपीड़ित, कोई झुटठा, कोई कायर, काई ईष्यालु, कोई स्त्री कोई दीक्षित जो मेरी गाथाओं को नही सुनाता कोई वितृतन्तु (बिगड़े शरीर वाला) मेरी होत्रा का पान न करे ।।92।।

मूल-

नोइत् अवो ज़ओथ्रो पइति-वीसे यो मावोय फ़्रङु.हरॅन्ति अ ँ्दोस्च करॅनोस्च द्रवोस्च मूरोस्च अरोस्च रङ्.होस्च अव दक्ष्त दक्ष्तव ँ्त या नोइत् पोउरु-जिर फ़्रदक्ष्त वीस्पनाँम् अनु माथ्राँम्। मा मे अएतयोस्चित् ज़ओथ्रयो फ़्रङ्.हरॅन्तु फ़्रकवो मा अपकवो मा द्रवो वीमीतो-द ँ्तानो ।।93।।

संस्कृतच्छाया-

नेत् अवा: होत्रा: प्रतिविच्छे या: मायवे प्रस्वरन्ति अन्धाश्च अकर्णाश्च द्रुहश्च मूढाश्च, अमृताश्च रड्घवश्च दक्षा दक्षवन्त: या: नेत् पुरुजीरा: प्रदक्षा: विश्वेषाम् अनुमन्त्राणाम्। मा मे एताया: चित् होत्राया: प्रस्वरन्तु प्रकवा: मा अपकवा: द्रुह: विमीत-दन्ता: ।।93।।

हिन्दी-अनुवाद-

मै उन होत्रों को स्वीकार नहीं करती, जो मेरे प्रीत्यर्थ अन्धे, बधिर, दुरात्मा, मूर्ख, अवारे रङ.घु लोग चिह्नरहित या चिह्नयुक्त जिनकी पवित्र मन्त्रों के लिए प्रभूत शक्ति नहीं है, पीते हैं। मेरे इस होत्र को कूबड़े, अधिक निकली हुई छाती वाले एवं सड़े हुए दाँतों वाले दुर्जन न पियें ।।93।।

मूल-

पइति दिम् पॅरॅसत् ज़रथुश्त्रो अरॅद्वीम सूरॉम् अनाहिताँम्। अरद्वी सूरे अनाहिते कम् इध ते ज़ओथ्रो बवइ ँ्ति यस-तव फ़्रबॅर ँ्ते द्रव ँ्तो दअेव-यस्नोङ.हो पस्च हू फ़्राष्मो-दाइतीम् ।।94।।

संस्कृतच्छाया-

प्रति ताम् अपृच्छत् जरदुष्ट्र: आर्द्रा शूराम् अनाहिताम्। आर्द्रे शूरे अनाहिते कम् ते होत्रा: अवन्ति यत् तव प्रभरन्ते द्रुह्यन्त: देवयज्ञास: पश्चात् सूर्य: (स्वर) प्रोष्म-दितिम् ।।94।।

हिन्दी-अनुवाद-

जरदुष्ट्र ने उस आर्द्रा शूरा अनाहिता से पूछा हे आर्द्रे! शूरे! अनाहिते! यहाँ उन होत्रों का क्या होता है जिन्हें दुष्ट देवोपासक सूर्यास्त के बाद तुम्हारे पास लाते हैं ।।94।।

मूल-

आअत् अओख़्त अरॅद्वी सूर् अनाहित। अॅरॅज्वो अषाउम् स्पितम ज़रथुश्त्र निवयक निपष्नक अप-स्करक अप-ख़्रओसक इमाे पइति-वीसॅँते याे मावोय पस्च वज़ॅँति क्ष्वश्-सताइश् हज़ड्.रम्च या नोइत् हइति वीसॅँति दअेवनाँम् हइति यस्न ।।95।।

संस्कृतच्छाया-

आत् अवोचत् आर्द्रा शूरा अनाहिता। ऋज्व: ऋतवन्तं श्वेततमं जरदुष्ट्रं निभयका: निपृतका: अपस्करका: अपक्रोशका: इमे प्रतिविशन्ति ये मायाविन: पश्चात् षट्शतै: सहस्रम् या नेत् सति विशन्ति देवानां सचन्ते सति यज्ञम् ।।95।।

हिन्दी-अनुवाद-

इसके अनन्तर आर्द्रा शूरा अनाहिता ने ऋतसम्पन्न सरल, श्वेततम (स्पितम-श्वेततमकुलोत्पन्न) जरदुष्ट्र से कहा- भय दिखाते हुए (गुर्राते हुए), थपथपाते हुए (पीटते हुए) कुरेदते हुए, चिल्लाते हुए छः सौ एवं एक हजार देव उन यज्ञों को न प्राप्त करे, उन हवियों को न पा सकें, जो मेरे मनुष्य मेरे सामने उपस्थित करते हैं ।।95।।

मूल-

यजाइ हुकइरीम् बरॅजो
वीस्पो वह्मॅम् ज़रनअेनॅम्
यह्मत् मे हच् फ्रज़्गधइते
अरद्वी सूर अनाहित
हज़ड्.राइ वरॅष्न वीरनाँम्
मसो क्षयेते ञ.रॅनड.हो
यथ वीस्पाे इमाे आपो
योा ज़्मा पइति फ्रतचॅँति
या अमवइति फ्रतचइति

अहे रय ख़्वरॅनङ्.हच --------- अर्‌शुख़्धअेइब्यस्य वाघ्निब्यो।

येञ्हे हाताँम् -------- तोास्चा यज़्मइदे ।।96।।

संस्कृतच्छाया-

यजे सुकर्य बृहन्तम्

विश्ववाहं हिरण्ययम्

यस्मात् मे सचा प्रस्कन्दते

आर्द्रा शूरा अनाहिता

(सहस्राय) सहस्रैः वर्ष्णा वीराणाम्

महः क्षयते स्वर्णसः

यथा विश्वाः इमाः आपः

याः ज्मां प्रति प्रतचन्ति

या अमवती प्रतचति ।।96।।

हिन्दी-अनुवाद-

मैं बृहत् सुकर्य का यजन करता हूँ, जो सबका वाहक एवं स्वर्णमय है। एक सहस्र मनुष्यों की ऊँचाई वाले जिस स्थान से मेरी आर्द्रा शूरा अनाहिता उछलती है। (जो) इतने ऐश्वर्य से युक्त है जितना ये सम्पूर्ण जल जो पृथ्वी पर विचरण करते हैं। वह शक्तिशालिनी (आर्द्रा शूरा अनाहिता) प्रवाहित होती है (विचरती है) ।।96।।

मूल-

यज़्अेष मे हीम् स्पितम् ज़रथुश्त्र याँम् अरद्वीम् सूराँम् अनाहिताम्

पॅरॅथू-[illegible] बअेषज़्याँम्

वीदअेवॉम् अहुरो त्कअेषाँम्

येस्न्याम् अङु.हे अस्त्वइते

व[illegible]न्याँ[illegible] अङु.हे अस्त्वइते

आधू-फ़्राधनाँम् अषओनीम्

वॉथ्वो-फ़्राधनाँम् अषओनीम्

गअेथो-फ़्राधनाँम् अषओनीम्

दञ्हु-फ़्राधनाँम् अषओनीम् ।।97।।

संस्कृतच्छाया-

यजेः मे सीं श्वेततम जरदुष्ट्र याम् आर्द्रां शूराम् अनाहिताम्

पृथु-प्राञ्चितां भेषज्याम्

विदेवाम् असुर-चिकितुषीम्

यज्ञीयाम् अस्मिन् अस्थिवति

वाश्याम् अस्मिन् अस्थिवति

आयुः-प्रवर्धिनीम् ऋतावरीम्

वास्त्व-प्रवर्धिनीम् ऋतावरीम्

गयथा-प्रवर्धिनीम् ऋतावरीम्

क्षियत् - प्रवर्धिनीम् ऋतावरीम्

दस्यु - प्रवर्धिनीम् ऋतावरीम् ।।97।।

हिन्दी-अनुवाद-

असुर मेधा ने श्वेततम जरदुष्ट्र से कहा- हे श्वेततम! जरदुष्ट्र। विस्तृत प्रसार वाली स्वास्थ्यप्रदा, देवविरोधिनी, असुर के नियम का पालन करने वाली, इस भौतिक जगत् में यागयोग्य, इस भौतिक जगत् में प्रार्थना के योग्य, आयु को बढ़ाने वाली ऋतावरी, पशुओं का संवर्धन करने वाली ऋतावरी, जीव-जगत् को बढ़ाने वाली ऋतावरी, क्षत्र को बढ़ाने वाली ऋतावरी, देश का बढ़ाने वाली ऋतावरी मेरी उस आर्द्रा शूरा अनाहिता का यजन करो ।।97।।

मूल-

यिम् अइबितो

हिश्तॅँत् बरस्मो-ज़स्त।

ताँम् यजॅँ त हवोवोड्.हो

ताँम् यज़ॅँत् नओतइयोाड.हो।

ईश्तीम जइध्यॅँत् हवोवो

आसु-अस्पीम् नओतइरे।

मोषु पस्चअेत हवोवो

ईश्तीम् बओन सॅविश्त

मोषु पस्चअेत नओतइरे

[illegible] ओोड.हाँम दख्युनाँम्

आसु अ[illegible] बवतू ।।98।।

संस्कृतच्छाया-

यम् अभितः मेधायज्ञाः

तिष्ठन्ति वर्ष्महस्ताः।

ताम् अयजन्त स्ववासः

ताम् अयदन्त नोतर्यासः।

इष्टिम् अगदन्त स्ववाः

आश्वश्वः नोतर्यः।

मक्षु पश्चात् स्ववाः

इष्टिम् अभवन् श्रविष्ठाः

मक्षु पश्चात् नोतर्य

व्युषिताश्वः एकां दस्यूनाम्

आश्वश्वतमः अभवत् ।।98।।

हिन्दी-अनुवाद-

जिसके चारो ओर मेधा (मज़्दा) को पूजने वाले हाँथ में वर्ष्म (बरॅस्म) को लेकर स्थित रहते हैं, उसका ह्वोवाकुलोत्पन्न लोगों ने यजन किया। उसका नओतर के कुल के लोगों ने यजन किया। ह्वोवा कुलोत्पन्न लोगों ने उससे इष्टि (सम्पत्ति) माँगा। नओतर कुल के लोगों ने उससे शीघ्रगामी अश्व माँगा। बाद में शीघ्र ही सम्पत्तिशाली होकर ह्वोवाकुलात्पन्न जन कीर्तियुक्त हो गये। बाद में शीघ्र ही नओतर के कुल का विस्तास्प (व्युषिताश्व) इन जनपदों में क्षिप्रतम अश्वों का स्वामी हो गया ।।98।।

मूल-

दथत् अएेइब्यस्चित् ततू अवतू आयप्तॅम् अरद्वी सूर् अनाहित

हध ज़ओथ्रो-बराइ अरॅद्राइ यज़ॅम्नाइ जइध्य ँताइ दाथ्रिश् आयप्तॅम्।।

अहे रय ख़्वरॅन-्हच ------- अर्शुख़्धएेइब्यस्च वाध्नि बयो।।

येञ्हे हाताँम् ------- तोस्चा यज़मइ े ।।99।।

संस्कृतच्छाया-

अददात् एभ्यः चित् तत् अवत् आप्त्यम् आर्द्रा शूरा अनाहिता सध होत्र-भराय ऋध्राय यजमानाय

गदते दात्री आप्त्यम् ।।99।।

हिन्दी-अनुवाद-

वरप्रदा आर्द्रा शूरा अनाहिता अनाहिता ने स्तोत्रोच्चारक दानी, प्रार्थना करते, उन यजमानों को उस वर को दे दिया ।।99।।

कर्त 23

मूल-

यजअेष में हीम् ----- दञ्हु-फ्राधनॉम् अषओनीम् ।।100।।

मूल-

येअ्हे हज़ाड्.रम् वइर्यनाँम्

हज़ाड्.रॅम् अपघ्ज़ारनाँम्

कस्चित्च अअेषाँम् वइर्यनाँम्

कस्चित्च अअेषाँम् अपघ्ज़ारनाँम्

चथ्वरॅ-सतॅम् अयरॅ-बरनाँम्

ह्वस्पाइ नइरे बरॅम्नाइ

कअ्हे कअ्हे अपघ्ज़ाइरे

न्मानॅम हिश्तइते हुधातॅम्

सतो रओचनम् बामीम्

हज़ाड्.रो-स्तूनॅम् हुकॅरॅतॅम्

बअेवर-फ़्र ॅम्बॅम् सूरॅम् ॥101॥

संस्कृतछाया-

यस्याः सहस्रं वार्याणाम्

सहस्रम् अपक्षाराणाम्

कश्चित् च एषां वार्याणाम्

कश्चित् च एषाम् अपक्षाराणाम्

चत्वारिंशत् अयराः वराणाम्

स्वश्वाय नराय वरिम्णे

कस्य कस्य अपक्षारे

मानं तिष्ठते सुधातम्

शतरोचनं भामीम्

सहस्रस्थूणं सुकृतम्

बेवर-स्कम्भं शूरम् ॥101॥

हिन्दी-अनुवाद-

जिसकी सहस्रों कोशिकायें, जिसके सहस्रों नाले व नहरें हैं। उन प्रत्येक कोशिकाओं, उन सभी नालों का विस्तार इतना है जितना कि मनुष्य एक शोभन अश्व पर आरूढ होकर चालीस दिन में सवारी कर सकता है। उन-उन अपक्षारों में सुबुध्न (अच्छी नींव वाले), शक्तिशाली, चमकते हुए सौ खिड़कियों, एक सहस्र थूनों, दस सहस्र खम्भों से युक्त सुनिर्मित भवन स्थित हैं ॥101॥

मूल-

कॅम् कॅमचित् अइपि न्माने

गातु सइते ख़्वइनि-स्तरॅतॅम्

हुबओइधीम् बरॅज़िश् हव ॅंतॅम्।

आतचइति ज़रथुश्त्र

अरॅद्वी सूर अनाहित

हज़ड्.राइ बरॅष्न वीर[illegible]

मसो क्षयेते ख़्वरॅनड.हो

यथ वीस्पो इमो आपो

यो ज़ॅमा पइति फ़्रतच ॅंति

या अमव ति फ़्रतच ति।

अहे रय ख़्वरॅनड्.हच --------- अर्शुख़्धअेइब्यस्च [illegible]॥

येञ्हे हाताँम् -------- तोस्चा [illegible]दे ॥102॥

संस्कृतच्छाया-

कं कम् चित् अपि माने

गातु क्षयते स्वनि-स्तृतम्

सुबोधीं बर्हिःस्यूतम्

आतचति जरदुष्ट्र

आर्द्रा शूरा अनाहिता

(सहस्रैः) सहस्राय वर्ष्णा वीराणाम्

महः क्षयते स्वर्णसः

यथा विश्वाः इमाः आपः

याः ज्मां प्रति प्रतचन्ति

या अमवती प्रतचति ।।102।।

हिन्दी-अनुवाद-

उन प्रत्येक गृहों में अच्छी प्रकार बिछा हुआ, सुगन्धित तकिये से युक्त शैयया स्थित है। हे जरदुष्ट्र! आर्द्रा शूरा अनाहिता मनुष्यों के सहस्र गुना ऊँचाई से (नीचे) प्रवाहित होती है। (जो) इतने ऐश्वर्य से युक्त है, जितना ये सम्पूर्ण जल, जो पृथ्वी पर विचरण करते हैं। वह शक्तिशालिनी (आर्द्रा शूरा अनाहिता) विचरती है अर्थात् प्रवाहित होती है ।।102।।

कर्त 24

मूल-

यजअेष में हीम् ----- दञ्हु-फ्राधनॉम् अषओनीम् ।।103।।

मूल-

ताँम् यज़त

याो अषव ज़रथुश्त्रो

अइर्येने बअेजहि बङ्.हुयाो दाइत्ययाो

हओमयो-गव बरॅस्मन

हिज़्वो दङ्.हङ्.ह माँथ्रच

वच च श्यओथ्नच जओथ्राब्यस्च

अर्शुख्ध्अेइब्यस्च वाघ्ज़िब्यो ।।104।।

संस्कृतच्छाया-

ताम् अयजत

यो ऋतावा जरदुष्ट्रः

आर्यायणे व्यचसि वस्व्याः दित्याः

सोम गवा वर्ष्मणा

जिह्वादंससा मन्त्रेण च

वाचा च च्यौत्नैश्च होत्राभ्यश्च

ऋजूक्तेभ्यश्च (ऋजूक्ताभ्यः)वाग्भ्यः ।।104।।

हिन्दी-अनुवाद-

जो ऋतपालक जरदुष्ट्र (है) (उसने) अच्छी (वस्वी) दिति के तट पर आर्यायण व्यचस् में सोम एवं गोमांस, वर्ष्म (वरॅस्म) जिह्वाचातुर्य, मन्त्र, वाणी, कर्म हविष्य एवं सरलता से बोले गये वचनों से उसका यजन किया ।।104।।

मूल-

आअत् हीम् जइध्यत्।

अवत आयप्तॅम् दज़्दि मे

वङ्हि सॅविश्ते अरॅद्वी सूरे अनाहिते

यथ अज़ॅम् ।चयेने

पुथ्रम यत् अउर्वत् - अस्पहे

तख़्मॅम् कवअेम् [illegible]

अनुमतॅअे दअेनयाइ

अनुख़्तॅअे दअेनयाइ

अनु - वर्‌श्तॅअे दअेनयाइ ॥105॥

संस्कृतच्छाया-

आत् सीम् अगदत्

अवत् आप्त्यं देहि मे

वस्वि श्रविष्ठे आर्द्रे शूरे अनाहिते

यथा अहं सचानि

पुत्रं यत् अर्वताश्वस्य

तक्ष्मं कविं व्युषिताश्वम्

अनुमतये धेनायै

अनुक्तये धैनायै

अन्वर्ष्टये धेनायै ॥105॥

हिन्दी-अनुवाद-

एतदनन्तर उससे याच्या की- हे अच्छी! सर्वाधिकीर्तिशालिनि! आर्द्रे! शूरे! अनाहिते! मुझे वह वर दो जिससे कि मै कवि-वंश में उत्पन्न, अर्वतास्प के पुत्र विस्तास्प (व्युषिताश्व) को धर्मानुकूल चिन्तन के लिए, धर्मानुकूल बोलने के लिए एवं धर्मानुकूल कार्य करने के लिए लगा सकूँ ॥105॥

मूल-

दथत् अह्माइ ततू अवतू आयप्तॅम् अरॅद्वी सूर अनाहित हध ज़ओथ्रो-बराइ

अरॅद्राइ [illegible]

जइध्य ँताइ दाथ्रिश् आयॅप्तॅम्

अहे रय ख़्वरॅनङ्‌हच ------- अर्‌शुख़्धअेइब्यस्च [illegible]॥

येञ्‌हे हाताँम् ------- तास्चा यज़मइदे ॥106॥

संस्कृतच्छाया-

अददात् अस्मै तत् अवत् आप्त्यम् आर्द्रा शूरा अनाहिता सध हांत्र-भराय

ऋध्राय यजमानाय

गदते दात्री आप्त्यम् ।।106।।

हिन्दी अनुवाद-

वरप्रदा आर्द्रा शूरा अनाहिता ने स्तोत्रोच्चारक, दानी, प्रार्थना करते उस यजमान (जरदुष्ट्र) को वह वर दे दिया ।।106।।

कर्त 25

मूल-

यजअेष में हीम् ----- दञ्हु-फ्राधनॉम् अषओनीम् ।।107।।

मूल-

ताँत् यज़त

[illegible] कव विश्तास्पो

पस्ने आपम् फ़्ज़्दानओम्

सतम् अ[illegible] अर्षनाँम् हज़ड.रॅम् गवाँम् बअेवरॅ अनुमयनाँम् ।।108।।

संस्कृतच्छाया-

ताम् अयजत

बृहद्धी कविः व्युषिताश्वः

पृष्ठे आपः प्रस्त्यानम्

शतम् अश्वानाम् ऋषणां सहस्रं गवां बेवरम् अनुमयानाम् ।।108।।

हिन्दी-अनुवाद-

महामति (बृहद्धी) कविवंशोत्पन्न व्युषिताश्व प्रस्त्यान (फ़्ज़्दान) के जल के

समीप (तट पर) सौ वेगशाली अश्वों, एक सहस्र गायों, दश सहस्र मेषों से उसका (आर्द्रा शूरा अनाहिता का) यजन किया ।।108।।

मूल-

आअत् हीम् जइध्यत्

अवत् आयप्तॅम् दज़्दि मे

वङु.हि सॅविश्ते अरॅद्वी सूरे अनाहिते।

यत् बवानि अइवि-वन्याो

ताँश्र्यव ँतॅम् दुज़्दअेनॅम्

पॅषनॅम्च दअेवयस्नॅम्

द्रव ँतॅम्च अरॅजत्-अस्पॅम्

अह्मि गअेथे पॅषनाहु ।।109।।

संस्कृतच्छाया-

आत् सीम् अगदत्

अवत् आप्त्यं देहि मे

वस्वि श्रविष्ठे आर्द्रे शूरे अनाहिते

यत् भवानि अभिवन्यः

तास्त्र्यवन्तं दुर्धनम्

पृतनम् च देवयज्ञम्

द्रोहवन्तं रजताश्वम्

अस्मिन गयथे पृतनासु ।।109।।

हिन्दी-अनुवाद-

इसके अनन्तर (व्युषिताश्व) ने उससे याच्ञा की- हे अच्छी! सर्वाधिक

कीर्तियुक्ते! आर्द्रे! शूरे! अनाहिते! मुझे वह वर दो जिससे मैं दुष्टधर्मा तास्त्यवान् (ताँथ्र्यव ्ँत), देवोपासक पृतन (पॅषनॅ), द्रोहयुक्त रजताश्व को इस संसार के युद्ध में जीतने वाला होऊँ (अर्थात् इन्हें पराजित कर सकूँ)।।109।।

मूल-

दथतू अह्माइ ततू अवतू आयप्तॅम् अरॅद्वी सूर अनाहिता हध ज़ओथ्रो-बराइ अरॅद्राइ यज़ॅम्नाइ

जइध्य ्ँताइ द्राथ्रिश् आयप्तॅम्।

अहे रय ख़्वरॅनङ्.हच ------ अरशुख़्धअेइब्यस्च वाघ्ज़िब्यो।।

येञ्हे हातॉम् ------ तॉस्च यज़मइदे ।।110।।

संस्कृतच्छाया-

अददात् अस्मै तत् अवत् आप्त्यम् आर्द्रा शूरा अनाहिता सध होत्र-भराय ऋध्राय यजमानाय

गदते दात्री आप्त्यम् ।।110।।

हिन्दी-अनुवाद-

वरप्रदा आर्द्रा शूरा अनाहिता ने स्तोत्रोच्चारक, दानी, प्रार्थना करते उस यजमान को वह वर दे दिया ।।110।।

कर्त 26

मूल-

यजअेष मे हीम् ----- दञ्हु-फ्राधनॉम् अषओनीम् ।।111।।

मूल-

ताँम् यज़त

अस्पायओधो जइरि-वइरिश्

पस्ने आपो दाइत्ययाो

सतॅम् अस्पनाँम् अर्ष्नाँम् हज़ड्.रॅम् गवाँम् बअेवरॅ अनुमयनाँम् ।।112।।

संस्कृतच्छाया-

ताम् अयजत

अश्वायोधः हरिवर्यः

पृष्ठे आपः दित्याः

शतम् अश्वानाम् ऋषणां सहस्रं गवां बेवरम् अनुमयानाम् ।।112।।

हिन्दी-अनुवाद-

अश्व पर सवार होकर युद्ध करने वाले हरिवर्य (ज़इरि-वइरि) ने दिति के जल के पीछे (दिति नदी के पृष्ठ पर) सौ वेगशाली अश्वों, एक सहस्र गायों एवं दश सहस्र अश्वों से उसका यजन किया ।।112।।

मूल-

आअत् हीम् जइध्यत्

अवत् आयप्तॅम् दज़्दि मे

वङु.हि सॅविश्ते अरॅद्वी सूरे अनाहिते

यत् बवानि अ.विवन्या।

पॅषो-चि ँग्हॅम् अश्तो-कानॅम्

हुमयकॅम् दअेवयस्नॅम

द्रव ँतमच अरॅजत्-अस्पॅम्

अह्मि गयेथे पॅषनाहु ।।113।।

संस्कृतच्छाया-

आत् सीम् अगदत्

अवत आप्त्यं देहि मे

वस्वि श्रविष्ठे आर्द्रे शूरे अनाहिते

यत् भवानि अभिवन्य:

पृत-चिह्नम् अष्टकर्णम्

सुमयकं देवयज्ञम्

द्रोहवन्तं रजताश्वम् (ऋजताश्वम्)

अस्मिन गयथे पृतनासु ।।113।।

हिन्दी-अनुवाद-

इसके बाद उससे प्रार्थना की- हे अच्छी, सर्वाधिककीर्तियुक्ते! आर्द्रे! शूरे! अनाहिते! मुझे वह वर दो जिससे कि मै आठ छिद्रों वाले पृत-चिह्न (पॅष-चि ँग्रहॅ), देवोपासक सुमयक (हुमयक) द्रोहयुक्त रजताश्व (अरॅज़त्-अस्पॅ) को इस संसार के युद्ध में पराजित करने वाला होऊँ ।।113।।

मूल-

दथत् अह्माइ तत् अवत् आयप्तॅम् अरॅद्वी सूर अनाहित हध जओथ्रो-बराइ अरॅद्राइ यज़ॅम्नाइ

जइध्य ँताइ दाथ्रिश आयप्तॅम्

अहे रय ख़्वरॅनङ्हच ----- अर्शुख्ध्अे ब्यस्च वाघ्ज़िब्यो।।

येञ्हे हाताँम् ----- ताोस्चा यज़मइदे।।114।।

संस्कृतच्छाया-

अददात् अस्मै तत् अवत् आप्त्यम् आर्द्रा शूरा अनाहिता सध होत्रभराय

ऋध्राय यजमानाय

गदते दात्री आप्त्यम् ।।114।।

हिन्दी अनुवाद-

वरप्रदा आर्द्रा शूरा अनाहिता ने होत्रोच्चारक, दानी, प्रार्थना करते यजमान को

वह वर दे दिया ॥114॥

कर्त 27

मूल-

यजअेष में हीम् ----- दत्र्हु-फ्राधनॉम् अषओनीम् ॥115॥

मूल-

ताँम् यज़त

व ्ँदरॅमइनिश् अरॅज़तू-अस्पो

उप ज़्रयो वोउरु-कषॅम्

सतॅम् अस्पनाँम् अर्ष्नाँम् हज़ड्.रॅम् गवाँम् बअेवरॅ अनुमयनाँम् ॥116॥

संस्कृतच्छाया-

ताम् अयजत

वन्दरमनिः रजताश्वः (ऋजताश्वः)

उप ज्रयः (ज्रयसम्) उरु-कक्षम्

शतम् अश्वानाम् ऋषणां सहस्रं गवां बेवरम् अनुम्यानाम् ॥116॥

हिन्दी-अनुवाद-

रजताश्व (अरॅजतू-अस्प) वन्दरमनि (व ्ँदरॅमइनि) ने उरुकक्ष (वोउरु-कषॅ) समुद्र के समीप सौ वेगशाली अश्वों, एक सहस्र गायों एवं दश सहस्र मेषों से उसका यजन किया ॥116॥

मूल-

आअत् हीम् जइध्यतू।

अवतू आयप्तॅम् दज़्दि मे

वड्.हि [illegible] अरॅद्वी सूरे अनाहिते

यतू बवानि अइवि-वन्यो

तख़्मॅम् कवअेम् वीश्तास्पम्

अस्पायओधॅम् जइरि-वइरीम्।

यतू अज़ॅम् [illegible]

अइर्यनाँम् दख़्युनाँम्

पँचसघ्नाइ सतघ्नाइश्च

सतघ्नाइ हज़ड्.रघ्नाइस्च

हज़ड्.रघ्नाइ बअेवरघ्नाइस्च

बअेवरॅघ्नाइ अहाँक्ष्तघ्नाइश्च ।।117।।

संस्कृतच्छाया-

आत् सीम् अगदत्।

अवत् आप्त्यं देहि मे

वस्वि आर्द्रे शूरे अनाहिते

यत् भवानि अभिवन्यः

तक्ष्मं काव्यं (कविम्) व्युषिताश्वम्

अश्वायोधं हरि-वर्यम्

यथा अहं निहनानि

आर्याणां दस्यूनाम्

पञ्चाषदघ्नाय शतघ्नाय च

शतघ्नाय सहस्रघ्नाय च

सहस्रघ्नाय बेवरघ्नाय च

बेवरघ्नाय असंख्यातघ्नाय च ।।117।।

हिन्दी-अनुवाद-

इसके अनन्तर उससे प्रार्थना की हे अच्छी! सर्वाधिककीर्तियुक्तेशालिनि! आर्द्रे! शूरे! अनाहिते! मुझे वह वर दो जिससे मै कविवंशी वीर व्युषिताश्व (वीश्तास्पॅ) एवं अश्व पर सवार होकर युद्ध करने वाले हरिवर्य (जइरि-वइरी) को पराजित करने वाला होऊँ। जिससे मै आर्य देशों के पचास को मारने के लिए एवं सौ को मारने के लिए, सौ को मारने के लिए एवं एक सहस्र को मारने के लिए, एक सहस्र को मारने के लिए एवं दश सहस्र को मारने के लिए, दश सहस्र को मारने के लिए एवं असंख्यों को मारने के लिए पहुँच सकूँ।।117।।

मूल-

नोइत् अह्माइ दथत् तत् अवत् आयप्तॅम् अरॅद्वी सूर अनाहित

अहे रय ख़्वरॅनङ्.हच ------ अर्शुख़्धेअइब्यस्च वाघ्जिब्यो

येञ्हे हाताँम् ------ ताोस्चा यज़मइदे ।।118।।

संस्कृतच्छाया-

नेत् अस्मै अददात् तत् अवत् आप्त्यम्

आर्द्रा शूरा अनाहिता ।।118।।

हिन्दी अनुवाद-

आर्द्रा शूरा अनाहिता ने उसे वह वर नहीं दिया ।।118।।

कर्त 28

मूल-

यजअेष में हीम् ----- दञ्हु-फ्राधनॉम् अषओनीम् ।।119।।

मूल-

येञ्हे चथ्वारो अर्षान

हाँम्-ताषत् अहुरो मज़्दो

वार्तम्च वारॅम्च मअेघॅम्च फ़्यङ्.हुम्च

मीशित ज़ी मे हीम् स्पितम् ज़रथुश्त्र

वारॅ ँतअेच स्नअेज़ि ँतअेच

स्रस्चि ँतअेच फ्रयङ्हु ँतअेच

येञ्हे अववत् हअेननाँम्

नव-सताइश् हज़ङ्.रॅम्च ॥120॥

संस्कृतच्छाया-

यस्य चत्वार: ऋषया:

समतक्षत् असुर: मेधा

वातम् च वारि च मेघम् च प्यसुम् च

मिष्ठि जमे (ज्माया) सीम् जरदुष्ट्र

वारानित्यै च स्नेहितये च

स्रंश्चितये च प्यस्वतये च

यस्या: अववत् सेनानाम्

नवशतै: सहस्रम् च ॥120॥

हिन्दी-अनुवाद-

असुर मेधा (अहुरोमज़्दा) ने जिसके लिए हे श्वेततम्! जरदुष्ट्र! वायु, जल, मेघ एवं हिमवृष्टि रूप चार अश्वों का निर्माण किया। (इसीलिए) भूतल पर सदैव जलवृष्टि हिमपात ओला एवं हिममयी वृष्टि होती है। इसकी सेनायें इतनी है कि (इनकी गणना) नौ सौ और सहस्र से युक्त है ॥120॥

मूल-

यजाइ ,कइरीम् बरॅज़ो

वीस्पो-वह्मॅम् ज़रनअेनॅम्

यह्मात् मे हच फ़्ग्नधइते

अरद्वी सूर अनाहित

हज़ड्.राइ बरॅष्न वीरनाँम्

मसो क्षयेते ख़्वरॅनड्.हो

यथ वीस्पाो इमाो आपाो

याो ज़्मा पइति फ्रतच ँति

या अमवइति फ्रतचइति

अहे रय ख़्वरॅनड्.हच - अर्शुख्धअेइब्यस्च वाघ्नि्ब्यो

येञ्हे हाताँम् ------- ताोस्चा यज़मइदे ।।121।।

संस्कृतच्छाया-

यजे सुकर्य बृहन्तम्

विश्ववाहं हिरण्यमयम्

यस्यात् मे सचा प्रस्कन्दते

आर्द्रा शूरा अनाहिता

सहस्रै: (सहस्राय) वर्ष्णा वीराणाम्

महः क्षयते स्वर्णसः

यथा विश्वे इमाः आपः

याः ज्मां प्रति प्रतचन्ति

या अमवती प्रतचति ।।121।।

हिन्दी-अनुवाद-

मै बृहत् सुकर्य का यजन करता हूँ, जो सबका वाहक व स्वर्णमय है। एक सहस्र मनुष्यों वाले जिस स्थान से मेरी आर्द्रा शूरा अनाहिता उछलती है। (जो) इतने ऐश्वर्य से युक्त है जितना ये सम्पूर्ण जल जो पृथ्वी पर विचरण करते हैं। वह शक्तिशालिनी (आर्द्रा

शूरा अनाहिता) प्रवाहित होती है (विचरती हैं) ॥121॥

कर्त 29

मूल-

यजअेष में हीम् ----- दञ्हु-फ्राधनॉम् अषओनीम् ॥122॥

मूल-

ज़रनअेनम् पइति-दानॅम्

वड्.हि हिश्तइते द्र[illegible]

अरद्वी सूर अनाहित

ज़ओथ्रे वाचिम् प[illegible]म्न

अवतू मनड्.इ मइनिम्न ॥123॥

संस्कृ[illegible]-

हिरण्ययं प्रति-धानम्

वस्वी तिष्ठते द्रढिम्ना

आर्द्रा शूरा अनाहिता

होत्रे वाचं प्रतिस्मरमाणा (प्रतिस्मरन्ती)

अवत् मनसा मन्यमाना ॥123॥

हिन्दी-अनुवाद-

वस्वी आर्द्रा शूरा अनाहिता स्वर्णनिर्मित लबादे को पहन कर आहुति एवं (प्रार्थनास्वरूप) वाणी की प्रतीक्षा करती हुई (अर्थात कौन व्यक्ति मुझे आहुति समर्पित करेगा एवं मेरे प्रति प्रार्थनारूप वाक् का उच्चारण करेगा) मन में यह सोचती हुई दृढता से स्थित होती है ॥123॥

मूल-

को माँम स्तवातू को यज़ाइते

हओमवइतिब्यो गओमइतिब्यो ज़ओथ्राब्यो यओज़्द़ाताब्यो

पइरि अङ्.हर्श्ताब्यो।

कह्माइ अज़ॅम उपङ्.हचयेनि हच-मनाइ च अन-मनाइच

फ़्रारङ्.हाइ हओमनङ्.हाइ च।

अहे रय ख़्वरॅनङ्.हच ----- अर्शुख़्धअेइब्यस्च [illegible]ो॥

येञ्हे हाताँम् ----- तोस्चा यज़मइदे ॥124॥

संस्कृतच्छाया-

कः मा स्तुयात् (स्तवात्) कः यजते

सोमवतीभ्यः गोमतीभ्यः होत्राभ्यः योर्धाताभ्यः परिसृष्टाभ्यः।

कस्मै अहम उपसचयानि () सचा-मनाय च

अस्मन्मननाय च परिवेषाय च सौमनस्याय च ॥124॥

हिन्दी-अनुवाद-

कौन मेरा स्तवन करेगा? कौन मेरा सोम एवं गोमांस, विशुद्धीकृत एवं सुनिर्मित मंत्रों से यजन करेगा? मैं किससे सम्पृक्त होऊँ? साथ सोचने के लिए मेरा चिन्तन करने के लिए, परिवेश के लिए, सौमनस्य के लिए ॥124॥

कर्त 30

मूल-

यजअेष में हीम् ----- दञ्हु-फ्राधनॉम् अषओनीम् ॥125॥

मूल-

या हिश्तइते फ़्वअेधॅम्न

अर्द्वी सूर् अनाहित

कइनिनो कॅहर्प स्रीरयाो

अश-अमयो हुरओधयाो

उस्कातू यास्तयाो अॅरॅ्ज़्वइथ्यो

रअेवतू चिथ्रम् आजात[illegible]ो

फ़्रज़ुषॅम् अध्कॅम् वङ्.हानॅम्

पोउरु-पक्ष्तॅम् ज़रनअेनॅम् ।।126।।

संस्कृतछाया-

या तिष्ठते (तिष्ठति) प्रवेद्यमाना

आर्द्रा शूरा अनाहिता

कन्यायाः कृपा श्रीरायाः

अत्यमायाः सुरोधायाः

उच्चात् यस्तायाः ऋजुवत्याः

रेवत् चित्रम् आजातायाः

प्रजुषम् अत्कं वसानाम्

परु-पृक्तं हिरण्ययम् ।।126।।

हिन्दी-अनुवाद-

स्मरण किए जाने पर जो आर्द्रा शूरा अनाहिता, सुशरीरा, अतिशक्तिशालिनी, लम्बे शरीर वाली, उपरिबद्धा, विशुद्ध सारल्योपेता, सुकुलोत्पन्ना, पूर्णरूप से स्वर्णजटित, आरामदायक लाबादे को पहने हुए (सहायतार्थ) स्थित होती है ।।126।।

मूल-

बाध यथ माँम् बॅरस्मो-ज़स्त

फ़्रा गओषावर [illegible]स्पम्न

चथ्रु-करन ज़रनऐनि

मिनुम् बरतू ह्वाजा।

अरॅद्वी सूर अनाहित

उप ताँम् स्रीराँम् मनओथ्रिम्।

हा हे मइधीम् न्याज़त

यथच हुकॅरॅप्त फ़्श्तान

यथ च अड्.हॅन निवा[illegible] ।।127।।

संस्कृतछाया-

बाढं यथा मां वर्ष्महस्ता

प्रा गोषावरं शीश्वानम्

चतुष्कर्णं हिरण्ययानि

मिनुम् अभरत् सुजाता

आर्द्रा शूरा अनाहिता

उप तां श्रीरां मनोत्रीम्

सा अस्याः मध्यं न्याजत

यथा च सुक्लृप्तं पयःस्थानम्

यथा च असन् निवाहान ।।127।।

हिन्दी-अनुवाद-

हाँथ में सदैव नियमानुकूल वर्ष्म को धारणा किये हुए, वह अपने कानों की ललरी (कोर) पर वर्गाकार, सुनहला कर्णावतंस और अपने सुन्दर गर्दन में स्वर्णिम हार धारण करती है। शोभना, सुघटितशरीरिणी आर्द्राशूरा अनाहिता ने अपनी कमर को कसा है, ताकि उसके स्तन सुडौल रहें और कसकर बधे रहें। ।।127।।

मूल-

उपइरि पुसाँम् ब[illegible]दयत

अरद्वी सूर अनाहित

सतो-स्त्रङ्.हाँम् ज़रनअेनीम्

अश्त-कओज़्दाँम् रथ-कइर्याँम्

द्रफ़्षकवइतीम् स्रीराँम्

अनुपोइ[illegible] हुकॅर[illegible] ॥128॥

[illegible]-

उपरि पुसां बन्धयति (बध्नाति)

आर्द्रा शूरा अनाहिता

शतस्तृस्वतीं हिरण्ययीम्

अष्टखेदिं रथकर्याम्

द्रप्षकवतीम् श्रीराम्

अनुपृथ्वतीम् सुकृताम् ॥128॥

हिन्दी-अनुवाद-

आर्द्रा शूरा अनाहित अपने शिरस् पर सात सितारों वाले, अष्टरश्मियों से युक्त, रथाकार, सुन्दर, आकर्षक बिन्दुओं वाले, सुनिर्मित सुनहले मुकुट को बाँधती है ॥128॥

मूल-

बव्रइनि वस्त्रो वङ्.हत

अरॅद्वी सूर अनाहित

[illegible]सतनाँम् बवूरनॉम्

चतुरॅ ज़ीज़नताँम् (यत् अस्ति बव[illegible] स्रअेश्त यथ यत् अस्ति गओनोतॅम

बवृइरिश् बवइति उपापो) कथ कॅरॅतम् श्वरश्ताइ ज़्रने

चरॅमो वअेन ँतोभ्राज़ॅ ँत

फ़्रॅन अॅरॅज़तॅम् ज़रनिम् ॥129॥

संस्कृतच्छाया-

बावेर्व्याणि वस्त्रा (णि) वसत्

आर्द्रा शूरा अनाहिता

त्रिंशतां बावेरूणाम्

चतुर्यूनाँम् (यत् अस्ति बावेरि: श्रेष्ठ: यथा अस्ति गुणतम: बावेरि: भवति उपाप:

यथा कृतं त्वष्टाय ज़्रवणे

चरमं वेनत: भ्राजन्ते

पूर्णं रजतं हिरण्यम् ॥129॥

हिन्दी-अनुवाद-

आर्द्रा शूरा अनाहिता बावेर (बावेरु-बेबीलोन) देश के वस्त्र को पहनती है, जो बावेरुवासी तीस व्यक्तियों (द्वारा बुना गया है) जिनमें चार युवा हैं और जो बावेरुवासी श्रेष्ठ है। बावरु में उत्पन्न जल के पास का (वस्त्र) सर्वोत्तम होता है और जब सही समय पर इनका निर्माण होता है, तो ये पूर्ण रूप से चाँदी और सोने की तरह आँखों के सामने चमकते हैं ॥129॥

मूल-

आअत् वडु.हि इध सॅविश्ते

अरॅद्वी सूर अनाहिते

अवत् आयप्तम् यासामि

यथ अज़ॅम् ह्वाफ़्रितो

मसक्षथ निवानानि

अश-पचिन स्तूइ-बखॅंध्र

फ्रओथतू - अस्प ख़्वनत्-चख्र

क्ष्वअेवयतू - अस्त्र अश् - बओउर्व

निधातो-पितु हुबओइधि

उप स्तॅरॅमअेषु वारॅम दइधे

परनङ्.हु ँ्तम् वीस्पाँम् हुज्याइतीम्

इरिथॅ ँ्तम् क्षथ्रम् जजाइति ।।130।।

संस्कृतच्छाया-

आत् वस्वि इह श्रविष्ठे

आर्द्रे शूरे अनाहिते

अवत् आप्त्यं याचामि

यथा अहं स्वाप्रीतः

महः क्षत्रं निवनानि

अश्वपृचिनः स्तूपवक्त्राः

प्रोथदश्वः स्वनत्-चक्रः

श्वियदस्त्रः अतिभूरयः

निहितपितुः हुबोधिः

उप स्तरमयेषु वारं दधे

पूर्णवन्तं विश्वां सुज्यातिम्

अर्थितं क्षत्रं सिषाति ।।130।।

हिन्दी-अनुवाद-

यहाँ, हे अच्छी! सर्वाधिककीर्तियुक्ते! आर्द्रे! शूरे! अनाहिते! मुझे वह वर दो

जिससे मै पूर्ण कृपा पाकर बड़े राज्यों को जीत सकूँ। उच्च मुखवाले प्रभूत अश्वों, खुर्रानेवाली वाले अश्वों, ध्वनियुक्त रथों, चमकती तलवारों, उपकरणों, प्रभूत भोज्य-पदार्थ, सुगन्धित शय्या से युक्त होऊँ। जिससे कि मै अपनी इच्छानुसार जीवन के लिए अच्छी वस्तुओं का सम्भार एवं वे सभी वस्तुएं, जो कि एक राज्य का निर्माण करती है, प्राप्त करूँ ।।130।।

मूल-

आअत् वड्.ही इध अरॅद्वी सूरे अनाहिते द्व अउर्वॅंत यासामि

यिम्च बिपइतिश्तानॅम् अउर्वॅंतॅम्

यिम्च चथ्वरॅ-पइतिश्तानॅम्

अओम् विपइतिश्तानॅम् अउर्वॅंतॅम्

यो अड्.हत् आसुश् उज़्गस्तो

हुफ्रओ-उर्वअेसो वाषाो पॅषनअेषुच

अओम् चथ्वरॅ-पइतिश्तानॅम्

यो हअेनयाो पॅरॅथु-अइनिकयाो

व उर्वअेसयत् करन

होयूम्च दषिनॅम्च

दषिनॅम्च होयूम्च ।।131।।

संस्कृतच्छाया-

आत् वस्वी इह आर्द्रे शूरे अनाहिते द्वौ अर्वन्तौ याचामि

यं च द्विप्रतिष्ठानम् अर्वन्तम्

यं च चतुष्प्रतिष्ठानम् अर्वन्तम्

यो असत् आशुः सुगतः (सुगतिः)

सुप्रोर्वेशः वाहः पृतनेषु च

एवं चतुष्प्रतिष्ठानम्

य: सेनाया: पृथ्वनीकाया:

एवं उर्वेशत्कर्ण:

सव्यं च दक्षिणं च

दक्षिणं च सव्यं च

हिन्दी-अनुवाद-

इसके पश्चात् हे अच्छी आर्द्रे! शूरे! अनाहिते! मैं तुमसे दो वीर (साथियों) को माँगता हूँ। जिस (उस) दो पैर वाले वीर को एवं जिस (उस) चार-पैर वाले वीर को (माँगता हूँ)। उस दो पैर वाले वीर को जो शीघ्रता करने वाला, शोभन गति सम्पन्न एवं युद्ध स्थल में रथ को तेजी से मोड़ने वाला हो एवं एक चार पैर वाले को (माँगता हूँ) जो विशालग्रभाग वाली शत्रु सेना के प्रत्येक कोने में (शीघ्रता से) मुड़ने वाला हो। बाएं से दाएं एवं दाएं से बाएं मुड़ सके ।।131।।

मूल-

अअेत यस्न अअेत वह्म

अअेत पइति अव-जस

अरॅद्वी सूरे अनाहिते

हच अवत्ब्यो स्तॅरॅब्यो

अओइ ज़ाँम् अहुरधाताँम्

अओइ ज़ओतारॅम् यज़ॅम्नम्

अओइ पॅरॅनाँम् वीघ्ज़ारयेइ ॅंतीम्

अवङ्.हे ज़ओथ्रो-बराइ अरॅद्राइ यज़ॅम्नाइ

जइघ्य ॅंताइ दाथ्रिश् आयप्तॅम्।

यथ ते वीस्पे अउर्व ॅंत

ज़ज़्वोङ्.ह पइति-जसाँन्

यथ कवोइश् वीश्तास्पहे।

अहे रय ख़्वरॅनङ्.हच .... अर्‌शुख़्धअंइब्यस्च वाघ्ज़िब्यो।।

येञ्‌हे हाताँम् .... तोस्वा यज़मइदे ।।132।।

संस्कृत-छाया-

एतेन यज्ञेन एतेन ब्रह्मणा

एतेन प्रति अव गच्छ

आर्द्रे शूरे अनाहिते

सचा अवत्भाः स्तृभाः

अभि ज्माम् असुरहिताम्

अभि होतारं यजमानम्

अभि पूर्णां विक्षरयन्तीम्

अवसे होत्र-भराय ऋधाय यजमानाय

गदते दात्री आप्त्यम्

यथा ते विश्वे अर्वन्तः

जिगीवान्सः प्रति-गच्छान्

यथा कवेः व्युषिताश्वस्य ।।132।।

हिन्दी-अनुवाद-

इस यज्ञ से एवं इस आह्वान से, इससे (इसके माध्यम से) हे आर्द्रे! शूरे! अनाहिते! उन सितारों से असुर-निर्मित इस पृथ्वी पर होता यजमान के पास, पूर्ण रूप से उबलते दूध के पास (जो तुम्हें समर्पित होगा) होत्र का सम्भरण करने वाले की रक्षा के लिए, दानी यजमान को वर प्रदान करने वाली तुम आओ। जैसे (जिससे) वे सभी वीर कवि (वीश्तास्प) की भाँति वीर हो जायें।

4

ऐतिहासिक टिप्पणियाँ

ऐतिहासिक टिप्पणियां

अइरएन वएज़ह् : यह स्थान आधुनिक ईरान में स्थित था। अइरएन वएजह् का संस्कृत समरूप 'आर्यायण व्यचस्' है। प्रो. क्षेत्रेश चट्टोपाध्याय के अनुसार वएजह का अर्थ बीज है। इसका नामान्तर 'अइर्यनम् वएज़ह अवेस्ता में उपलब्ध होता है, जिसकी संस्कृतच्छाया आर्याणम् व्यचस्' है जिसका अर्थ है आर्यों का मूल स्थान। वेद में भी 'व्यचस्' शब्द का प्रयोग अनेक स्थलों पर है इसी अर्थ में हुआ है-

सं यन्यदाय शुष्मिण एना ह्यस्योदरे।

समुद्रो न व्यचो दधे।। (ऋग्वेद 1.3.30 **)**

ब्रह्मेदमूर्ध्वं तिर्यक् चान्तरिक्षं व्यचो हितम्। (अथर्ववेद 10.2.25 **)**

आर्य लोग ईरान में कब और कहाँ से पहुँचे, इसके बारे में ऐतिह्यविदों के मध्य नाना मतवाद प्रचलित हैं। सर्वाधिक मान्य मत है कि वे मध्य एशिया से ईरान में आए एवं अइरएन वएज़ह् में बस गये। मूलदेश की विस्मृति के कारण वे अइरएन वएज़ह् को ही अपना मूल देश मानने लगे। यह भी सम्भावना हो सकती है कि ईरान के प्रान्त विशेष में बसने के पूर्व उनका कोई निश्चित ठिकाना एवं स्थाई वास न रहा हो। एक मत के अनुसार इनका एक जत्था वंक्षु (आकसस) के उत्तरी भाग में बस गया। अन्य जातियों के दबाव के कारण इनको दक्षिण को ओर बढ़ना पड़ा। इसके बाद ये दो शाखाओं में बँट गये। भारत में प्रवेश करने वाली शाखा भारतीय कहलाई एवं ईरान में प्रवेश करने वाली शाखा ईरानी आर्य।[1]

अइर्यनाम् वएज़ह कहाँ स्थित था, इसके बारे में दो धारणाये हैं- प्रथम उत्तरपश्चिम ईरान एवं दूसरा पूर्व फरमनाह्-ख्वारिज़्म प्रान्त।[2]

अ. **अज़ीदहाक**- अज़ीदहाक का अवेस्ता में असकृद् स्थानों पर उल्लेख हुआ है। अज़ी का वैदिक समरूप अहि है। अज़ी (अहि) शब्द की व्युत्पत्ति अघ् धातु से हुई है। 'अघ्' धातु से ही अंग्रेजी Ugly, Agony, Awk आदि शब्द निष्पन्न हैं। 'अहि' शब्द

---

1. प्राचीन विश्व की सभ्यताये : डॉ आर. एन. पाण्डेय, पृष्ठ 415-416

2. अवेस्ता ह्ओम यस्त : डॉ हरिशङ्कर त्रिपाठी

की यास्क द्वारा की गयी निरुक्ति[1] सन्तोषप्रद नहीं है। वह वब्रिदेश (आधुनिक बेबोलेनिया, पालिसाहित्यगत बावेरु) का अत्याचारी शासक था। इसने साधु जनों को पीडित करने के लिए अनेक यजतों से यजनपूर्वक वर माँगा।[2] यजतों ने उसकी दुष्प्रवृत्ति को देखकर उसे कोई वरदान नहीं दिया। अज़ीदहाक ने विवस्वान् (विवङ्हु) पुत्र यम (यिम) को मारकर उसकी रूपवती भगिनीद्वय अरॅनवाक् एवं संघवाक् का अपहरण कर लिया। इसके तीन मुख, तीन कुत्सित शिर, छः आँखें थीं। इसके पास सहस्रों युक्तियां थीं। अङ्रो मइन्यु ने ऋत-जगत् के विनाशार्थ उसको उत्पन्न किया। आथ्व पुत्र थ्रएतओन ने इसका वध किया एवं यम भगिनियों को मुक्त किया। थ्रअेतओन (त्रैतान) द्वारा अज़ीदहाक के वध की घटना निम्नलिखित अवेस्तीय मन्त्रों में अभिव्यक्ति हुई है, जिसमें उपर्युक्त अज़ीदहाक के समग्र विशेषण भी समाहित हैं-

आथ्वो माँम् बित्यो मश्यो

अस्त्वइथ्याइ हुनूत गअेथ्याइ

हा अह्माइ अषिश् अॅरॅनावि

ततू अह्माइ जसतू आयप्तॅम्

यतू हे पुथ्रो उस्-ज़ायत

वीसो सूरयो थ्रअेतओनो (हओमयश्तू 9/7)

यो जनतू अज़ीम दहाकॅम्

थ्रि[illegible] थ्रिकमॅरॅधॅम्'

क्ष्वश्-अषीम् हज़ङ्.र-यओक्ष्तीम

अशओजड.हम् दअेवीम् द्रुज़ॅम्

अघॅम् गअेथाव्यो द्रव ँ्तॅम्

---

1. अहिरयनात्-एत्यन्तरिक्षे। अयमपीतरो[illegible], निर्ह्रसितोपसर्गः आहन्तीति। निरुक्त 2/17

2. अवेस्ता, अ. सू. यश्त 28-31

याँम् अश ओजस्तॅमॉम् द्रुजॅम्

फ़्च कॅरॅ्ँतत् अड्.रो-मइन्युश्

अओइ याँम् अस्त्वइतीम् गअेथाम्

मह्र्काइ अषहे गअेथनाँम्॥ (हओमयश्त् 9/8)

वेद में अहि वध का श्रेय इन्द्र को है "अहन्नहिं पर्वते शिश्रियाणम् (ऋ० 1.32.4) यदिन्द्राहन् प्रथमजामहीनाम् (ऋ० 1.32.4)। अवेस्तीय अहिकोंदहाक कहा गया है (संभवत दहाक का अर्थ दहा ग्राम का निवासी है) वैदिक अहि को भी दास कहा गया। वेद में अज़ी दहाक के विशेषण (थ्रिकमॅरॅधॅम्) 'तीन शिर वाले' की अनुकृति पर 'त्वाष्ट्र असुर' की कल्पना है जो त्रिशीर्षा था। त्रित ने इन्द्र की सहायता से उसका वध किया-

स पित्र्याण्यायुधानि विद्वानिन्द्रेषित आप्त्यो अभ्ययुध्यत्

त्रिशीर्षाणं सप्तरश्मिं जघन्वान्त्वाष्ट्रस्य चिन्निः ससृजे त्रितो गाः॥ (ऋ0 10.8.8)

इस विवेचन से यह स्पष्ट है कि अहि-सम्बद्ध वैदिक एवं अवेस्तीय आख्यान में अद्भुत साम्य है। यह तथ्य भी ध्यातव्य है कि इस अहिवध से सम्बद्ध कथा लगभग सभी प्रचीन विकसित सभ्यताओं के काल के साहित्य में उपलब्ध होती है।

आथ्रवन आदि सामाजिक वर्ग-ऋग्वेद के 10 वें मण्डलान्तर्गत पुरुष सूक्त में ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य, शूद्र का उल्लेख है। अवेस्ता में भी वर्ण चतुर्धा है। वहाँ वर्ण का विभाजन निश्चिततया कर्मानुसार है। वहाँ वर्णों के 'पिश्त्र्य' का वर्णन है, इसी 'पिश्त्र्य' शब्द से आधुनिक फारसी के 'पेशा' शब्द का विकास हुआ है, अतः पिश्त्र्य का अर्थ कार्य ही है। अवेस्तीय वर्णों के नाम हैं- आथ्रवन, रथअेश्तर फ्षुयांस् एवं हुइति। अवेस्ता में 'आतर्' अग्नि का वाचक है वेद में उसका समरूप अथर् है। यद्यपि अथर् शब्द का स्वतंत्र प्रयोग तो नहीं किन्तु समास के पूर्वपद के रूप में 'अथर्यु' शब्द में दिखाई देता है-

दूरेदृशं गृहपतिमथर्युम् (ऋ० 7.1.1)

अथर्यु शब्द का अर्थ है 'अग्नि को चाहने वाला'। आथ्रवन अग्निपूजद पुरोहित था। वैदिक 'अथर्वन्' एक ऋषि का अभिधान है। अर्थवन् ऋषि के ही नाम पर तुरीया वैदिक संहिता 'अथर्ववेद' के नाम से प्रथित हुई। समाज में आथ्रवन का बहुत सम्मान था। पौरोहितय कर्म का सम्पादन स्त्रियां भी करती थीं। (यस्न 10.15)

रथअेश्तर् का संस्कृत रूपान्तर 'रथेष्ठा' है। यह योद्धा-वर्ग था। भारतीय क्षत्रियों की भाँति इनका मुख्य कार्य युद्ध था।

तीसरा वर्ग फ्षुयांस (पशुमत्) था। इस वर्ग के लोग कृषि एवं पशुपालन करते थे। पशु आर्यों की महत्त्वपूर्ण सम्पत्ति थे। पशु का अधिक्य समृद्धि का सूचक था। फ्युयांस भारतीय साहित्य में वर्णित वैश्यों के तुल्य थे जिनका कर्म कृषि, गोरक्ष्य एवं वाणिज्य बतलाया गया है। फ्षुयांस लोगों द्वारा वणिक्कर्म के प्रमाण नहीं मिलते।

'हूइति' चतुर्थ एवं अन्तिम वर्ण था। हूइति लोग कारीगर लोग थे एवं शिल्प कार्य में दक्ष थे। प्रारम्भ में यह 'व्यवस्था आनुवंशिक न थी किन्तु बाद में आनुवांशिक हो गयी।

अषवज़्दाह – इसका संस्कृत रूप 'ऋतवृद्ध' है अतः इसका अर्थ है नैतिक नियमों से बढ़ा हुआ। इसके पिता का अभिधान 'पोउरुदक्ष्त' है। दीनकर्त 9.16.17 के अनुसार यह ख़्वनिरथ के सात अमर्त्य राजाओं में एक है। बुन्देहिश्न 29.6 के अनुसार यह अन्तिम संघर्ष में सोष्यन्तों के सहायतार्थ अवतरित होगा।

अरॅज़त-अस्प – यह जरथुश्त्र धर्म का घोर विरोधी था। अवेस्ता एवं पह्लवी ग्रन्थों में इसे शत्रुभावोपेत जनों का नेता कहा गया है। इसके कुल को 'ख्योन' कहा गया है, जो सम्भवतः हुनुओं की ही एक शाखा थी। फिरदौसी विरचित शाहनामा में अरॅज़त्-अस्प को 'अर्जास्प' कहा गया है। यह अपने चाचा अफ़्रासियाब के बाद सिंहासनारूढ हुआ। अफ्रासियाब को तूर कहा गया है, अतः निस्सन्देह अर्जास्प भी तूरानी रहा होगा। परन्तु इसे 'तूर' न कहकर 'ख्योन' कहा गया है, इसलिए यह शब्द इसका विशेषण भी हो सकता है। कवि वीश्तास्प और इसके मध्य तीन युद्ध हुए (यश्त्-17.49-50)। इसके एक आक्रमण में 'जरथुश्त्र को अपने प्राणों से हाथ धोना पड़ा। किन्तु अन्ततः यह वीश्तास्प से पराजित हुआ। वीश्तास्प ने अरॅज़त्-अस्प को पराजित करने के लिए 'अरॅद्वी सूरा' का यजन किया एवं उससे वर माँगा-

आअत् हीम् जइध्यत

यत् बवानि अइविवन्यो

ताँथ्र्यव ँतॅम् दुज़्दअेनॅम्

पॅषनॅ च द[illegible]

द्रव ँतॅम्च अरॅज़त्-अस्पम्।। (अ.सू. यश्त्.109)

कवि उसन् – कवि उसन् कविवंशीय सम्राट् था। उस वंश का संस्थापक कवि कवात था। अवेस्ता के 13वें यश्त् के 132 वें मन्त्र एवं 19.71 तथा पह्लवी ग्रन्थ बुन्देहिश्न 31.25 में इस वंश के शासकों का वर्णन मिलता है, जिनकी संख्या सात हैं। कवि कवात के उपरान्त उसके नप्तृ कवि उसन् ने सत्ता की बागडोर को सम्भाला। अवेस्ता में उसे 'अर्वा' (क्षीप्रगामी) एवं 'अशवॅरॅचह्' (अतिवर्चस्वी) आदि विशेषणों से मण्डित किया गया हैं। वैदिक साहित्य में 'काव्य उशनस्'[1] का वर्णन आता है। परवर्ती भारतीय साहित्य में भी काव्य उशनस् का वर्णन है। भारतीय साहित्य में 'उशनस्' का समीकरण शुक्राचार्य के साथ किया गया है। शुक्राचार्य इन्द्र का धुर विरोधी है।

कॅरॅसास्प – इसका वैदिक रूपान्तर 'कृशाश्व' (क्षीण अश्ववाला है) इसके पिता का नाम थ्रित (वैदिक-त्रित) एवं इसके अग्रज का नाम उर्वाक्षय (महान् शासक) था। बुन्देहिश्न 31.26-27 में इसके पिता को अत्रुत कहा गया है जो अवेस्तीय थ्रित का पह्लवी रूपान्तरण है। इसके भाई 'उर्वाक्षय' को श्रेष्ठ विधि निर्माता (दातो राजो) कहा गया है। परवर्ती साहित्य में इसकी चर्चा न के बराबर है। इसके द्वारा निर्मित विधि संहिता भी उपलब्ध नहीं है। किन्तु सम्भवतः ईरान में विधिवत् विधि की स्थापना करने वाला यह प्रथम व्यक्ति था। कॅरॅसास्प को अवेस्ता में युव (युवा) गएसुश् (केशव) एवं गधावरो (गदावर) जैसे विशषणों से मण्डित किया गया है। इसने गन्दॅरव (गन्धर्व) अज़ीस्रवर (अहिश्रृङ्गभर) आदि का वध किया। कॅरॅसास्प का चरित्र पौराणिक साहित्य के श्री कृष्ण से अत्यधिक समानता रखता है। कॅरॅसास्प को अवेस्ता में युवा कहा गया है। भगवान् कृष्ण भी सनातन षोडषवर्षीय अतएव चिर युवा हैं। करसास्प को गएसुश् कहा गया है, श्री कृष्ण का भी केशव प्रसिद्ध अभिधान है। कॅरॅसास्प को गदावर कहा गया है। भगवान् कृष्ण भी श्री विष्णु के अवतार होने के कारण शंख, चक्र गदा एवं पद्म से युक्त बतलाए गये हैं-

तमद्भुतं बालकमम्बुजेक्षणं

चतुर्भुजं शङ्[illegible]ायुधम्। श्रीमद्भागवत (10.3.9)

कॅरॅसास्प ने अहिवध किया। भगवान कृष्ण ने भी कालिय नाग का दमन किया।

कङ्हा – यह एक भू-भाग का नाम है। ईरान के पूर्व में कङ्हा का राजप्रासाद श्यावार्षन् के द्वारा निर्मित हुआ था। पह्लवी ग्रन्थ दीनकर्त के वर्णनानुसार (दीनकर्त9.16.

---

1. कविर्विप्र : पुरएता जनानाम् ऋभुर्धीरं उशना काव्येन। (ऋ. 9/87/3)

15) पेशोतनु जो कि विस्तास्प का पुत्र था, वह कङ्.?? में वास करता था।

गन्दरॅव- गन्दरॅव का वैदिक समरूप गन्धर्व है। अवेस्तीय वर्णनों के अनुसार यह वोउरु- कष सागर में निवास करता है। यह 'जइरि पास्न' सुनहरी एड़ी वाला है। ऋग्वेद में उसे 'हिरणपक्ष' 'सुनहले पक्षों वाला' कहा गया है। ऋग्वेद में यद्यपि इसे आकाश मध्यवर्ती बताया गया है (कभी-कभी स्वर्ग का निवासी भी) किन्तु अनेक स्थलों पर इसको जल में निवास करने वाला माना गया है-

गन्धर्वोऽप्स्वप्या च योषा सा नो नाभिः परमं जामितन्नौ (ऋग्वेद 10.10.4)

गन्धर्व के अवेस्तीय निवास 'वोउरु-कष' से साम्य के आधार पर यह सुरक्षित निष्कर्ष निकाला जा सकता है कि गन्धर्व के जल के साथ सम्दन्ध की कल्पना प्राचीन है। अवेस्ता में यह एक दुरात्मा है, जिसका कॅरॅसास्प ने वध किया। यह भी ध्यातव्य है कि अवेस्तीय गन्दरॅव एक व्यक्ति-वाचक संज्ञा है। वैदिक साहित्य में यद्यपि इसको देवत्व प्रदान किया गया है किन्तु फिर भी कलहप्रियता एवं स्त्रीलोलुपत्व जैसे दुरात्माओं में सुलभ होने वाले दुर्गणों का भी वर्णन प्राप्त होता है। ऋग्वेद में गन्धर्व को सोम का रक्षक कहा गया है-

गन्धर्व इत्था पदमस्य रक्षति (ऋ० 9.83.4)

चऐचिस्त - चऐचिस्त एक झील का नाम है, जो अतरपातकान में स्थित है।

ज़इरि-वइरि- ज़इरि-वइरि का संस्कृत रूप 'हरिवर्य' है। यह 'अउर्वतास्प' का पुत्र एवं कवि वीशतास्प का भाई था। फ़िरदौसी के शाहनामा में जइरि-वहरि को ज़रीर इस अभिधान से मण्डित किया गया है। इसको अस्पायओध (अश्वायोध) अश्वपर बैठकर युद्ध करने वाला कहा गया है। इसने दिति (दाहति) सरित्तट पर 'अरद्वी सूरा अनाहिता' का यजन किया-

ताँम् यज़त

अस्पायओधो ज़इरि-वइरिश्

यस्ने आपो दाइत्ययो।। (अ.सू.यश्त् 112)

उसने हुमयक नामक एक दुरात्मा का वध किया, जो अरॅज़त्-अस्प का भाई था।

ज़ओतर : इसका संस्कृत रूपान्तर होतर् (होतृ) है। वैदिक यागों में होता ऋङ्.मन्त्रों

का पाठ करता है-

ऋचां त्वः पोषमास्ते पुपुष्वा॰ (ऋ० 10.17.11)

यही कारण है कि ऋग्वेद का अपर अभिधान 'होतृवेद' भी है। अवेस्तीय ज़ओतर यस्न के अवसर पर प्रधान पुरोहित की भूमिका निभाता है। यस्नकार्य-सम्पादनार्थ उसके सात अन्य सहायक होते हैं। ज़ओतर मुख्यतया अवेस्तीय गाथाओं का पाठ करता है। इसके सहायकों को 'रतव' 'ऋत्विज' कहा जाता है। कभी-कभी यस्न कार्य को यह अकेले भी सम्पन्न करता है। वैदिक यज्ञों में मुख्यतया होता के अतिरिक्त अध्वर्यु, उद्गाता एवं ब्रह्मा नामक ऋत्विक् होते हैं। किन्तु सत्रदि में षोडष ऋत्विक् तक होते हैं। प्राचीन यस्न भी षोडष ऋत्विजों द्वारा सम्पाद्य था।

जामास्प - यह कवि विस्तास्प (वीशतास्प) का प्रधानमन्त्री था। जरथुश्त्र की तृतीया कन्या 'पोउरुचिस्ता' के साथ इसका परिणय हुआ। यह 'ह्वोवा' के कुल था एवं इसके भाई का नाम 'फ्रशअओश्त्र' था। यह सुविदित तथ्य है कि ह्वोवा से जरथुश्त्र का विवाह हुआ था।

तूर्य फ्रङ्.रस्यान - तूर्य का अर्थ है 'तूर निवासी'। फ्रङ्.रस्यान तूरान का निवासी था। तूर लोग घुमक्कड़ आर्य कबीला थे। निरन्तर आक्रमण के कारण यह उन सभी कबीले का वाचक हो गया, जो ईरान में व्यवस्थित हुए आर्यों पर आक्रमण किया करते थे। शाहनामा के अनुसार आक्सस नदी तूरान को चीन व तुर्क से पृथक् करती थी। फ्रङ्.रस्यान तूरजनाधिप था। वह ईरान-तूरान संघर्ष में तूरानियों का नेता था। यह ईरान-तूरान संघर्ष काफी लम्बा चला, जो कि ईरानी सम्राट् मनुचिथ्र के समय प्रारम्भ होकर हओस्रवङ्.ह के काल तक चला। हओस्रवङ्.ह ने फ्रङ्.रस्यान का वध कर इस दीर्घकालिक परस्पर युद्ध का अन्त कर दिया।

दाइति : यह प्राचीन ईरान (अइर्यन वएज़ह) की पवित्र नदी एवं महात्मा ज़रथुश्त्र की साधनाभूमि थी। अवेस्ता में इसे वस्वी (श्रेष्ठ) कहा गया है, यहीं स्थित होकर ज़रथुश्त्र ने अर्द्वी सूरा अनाहिता का यजन किया था-

ताँम् यज़त

यो अषव ज़रथुश्त्रो

अइर्येने बअेजहि वङ्.हुयो दाइत्ययो

दिति-सरित्तट पर स्थित भूभाग को भी दिति कहा गया। उस भूमि के निवासी दैत्य कहलाये। दितिभिन्न भूमि को अदिति कहा गया। प्रो०हरिशङ्कर त्रिपाठी जी के अनुसार दिति-अदिति का यही मूल रहस्य है। भारत और ईरानी आर्यों के आपसी संघर्ष एवं परस्पर विद्वेष के कारण 'दैत्य' शब्द उसी प्रकार हीनार्थक हो गया जैसे 'असुर' शब्द । परवर्ती भारतीय साहित्य में तो दोनों एक दूसरे के पर्याय से हो गये।

दानव - यह एक तुरानी कबीले का नाम है। सम्भवतः इसे वैदिक दानु का वंशज होना चाहिए। वेद में वृत्र की माता का नाम 'दानु' है।

दानुः शये सहवत्सा न धेनु। (ऋ० 1.132.9)

वेद में दानव शब्द भी अनेकत्र प्रयुक्त दिखाई पड़ता है-

नि मायिनो दानवस्य माया।

अपादयत् पपिवान्त्सुतस्य।। (ऋ० 2.11.10)

फ्रयान् योइश्त- फ्रयान् योइश्त (प्रेयान् यविष्ठ) फ्रयान्-कुलोत्पन्न व्यक्ति था। इसने यातुकर अख़्त्य के 99 प्रश्नों का उत्तर दिया था। इस अवेस्तीय तथ्य पर आश्रित होकर एक कथा विकसित हुई, जिसका वर्णन एक पह्लवी कथा मॉतीकॉन इ योश्त् इ फ्रयान' में किया गया है जिसके अनुसार अख़्त्य एक नगर में आता है और लोगों को मार डालता है। जो व्यक्ति उसके प्रश्नों का उत्तर देने में असमर्थ थे, उन्हे वह मार डालता था। अन्त में 'योइश्त' ने अख़्त्य के प्रश्नों का उत्तर दिया। इस ग्रन्थ में प्रश्नों की संख्या को 33 बताया गया है। अन्त में उसने भी अख्त्य से प्रश्न किया, उत्तर न मिलने पर उसने अख़्त्य को मृत्यु के मुख में धकेल दिया। यह अवेस्तीय कथा महाभारत के यक्ष-प्रश्न से अत्याधिक साम्य रखती है। यक्ष के प्रश्न का उत्तर न देने पर भीम, अर्जुन, नकुल एवं सहदेव की मृत्यु हो जाती है। अन्त में युधिष्ठिन यक्ष के प्रश्नों का उत्तर देकर अपने भाइयों के जीवन को वापस पाते हैं। अख्त्य एवं यक्ष में कुछ ध्वनि साम्य भी है, और कुछ चरित्रसाम्य भी। अख़्त्य यातुकर था। यक्ष भी इस शक्ति से सम्पन्न रहा होगा। वैदिक साहित्य में 'यक्ष' शब्द रहस्यार्थक भी है- 'यदपूर्वं यक्षमन्तः प्रजानाम्'। जादू भी रहस्यात्मक ही होता है। किन्तु महाभारतीय यक्ष धर्मात्मा है एवं अवेस्तीय अख़्त्य दुरात्मा है। इसीलिए यविष्ठ द्वारा अख्त्य का वध किया गया, किन्तु युधिष्ठिर एवं यक्ष के बीच ऐसी स्थिति नहीं बनी।

बव्‌रिश् : आधुनिक बेबीलोन का अवेस्ता कालीन अभिधान बव्‌रिश् था। इसकी संस्कृतच्छाया 'बव्रिः' है। पालिसाहित्यान्तर्गत 'बावेरुजातक' में बावेरु बव्रि (बेबीलोन) ही है। यहाँ वस्त्रों की बहुत अच्छी बुनाई होती थी। अरद्वी सूरा अनाहिता को अवेस्ता में बव्रिदेशीय वस्त्र को पहने हुए दिखाया गया है–

बव्‌रइनि वस्त्रो वङ्‌हत

अरद्वी सूर अनाहित

थ्रिसतनाँम् बवूरनाँम्

--- **यत् अस्ति बव्‌रिश् स्त्रअेश्त्**

वस्तुतः कपड़ा बुनने की कला के कारण ही इस थान का नाम 'बवूरिश्' पड़ा। वेञ् धातु के अतिरिक्त बुनने के अर्थ में 'वभ्' धातु की सत्ता रही होगी। यद्यपि धातुपाठों में ऐसी कोई धातु नहीं गिनाई गयी है। इसका मुख्य कारण है क्रिया रूप में इसकी अप्रयुक्ति। प्रो. हरिशङ्‌कर त्रिपाठी जी 'वभ्' से ही बव्रि (बवूरिश्) की निष्पत्ति बतलाते हैं। उनके अनुसार संस्कृत संज्ञापद उर्णवाभ, और्णवाभ में 'वाभ' पद वभ् धातु से ही विकसित है। 'वभ्' से ही आधुनिक फारसी क्रिया पद 'वाफ़्तन' (बुनना) एवं वाफ़्त (बुना गया) का विकास हुआ है। अंग्रेजी क्रियापद weave भी वभ् धातु से ही विकसित है। सामान्यतया इस आङ्‌ल क्रिया पद को सुधीजन 'वेञ्' धातु से विकसित मानते हैं। बव्‌रिश् एवं weave में ध्वनितः एवं अर्थतः साम्य है। बेबीलोन ऊनीवस्त्रों के लिए प्राचीन समय में अति प्रसिद्ध था। प्राचीन फारसी शिलालेख में 'बवूरिश्' की संज्ञा बाबिरुश् है। हखामनीषी शासक धारयद्‌वसु के तेइस राज्यों में यह अन्यतम था– **थातिय दारयउश् ख़्शायथिय इमा दह्याव त्या मना पतियाइ[illegible] – वश्ना अहुरमज्दाह अदम्शाम् ख़्शायथिय आहम् पार्से उब्ज बाबिरुश्** ----- (धारद्‌वसु-बहिस्तन प्रथम प्रकोष्ठ)

धारयद्‌वसु बावेरु में विद्रोह की भी चर्चा करता है।

माज़इन्य– माज़इन्य का अर्थ है माज़न से सम्बद्ध । माज़न एक प्रदेश का नाम है जो कि दुरात्माओं (दएवों) एवं यातुओं का शरणस्थल था। इसके दक्षिणी सीमा पर 'दमाबन्द' नामक पर्वत की स्थिति है,जहां कि अवेस्तीय पुराकथाओं के अनुसार अज़ी दहाक को बन्दी बनाया गया था। इसका आधुनिक अभिधान माज़ानदरान है।

यिम क्षएत – यिम का वैदिक समरूप यम है। अवेस्ता में इसे विवस्वान् (विवङ्.ह्व) का पुत्र कहा गया है '**यिमो यो विवङ्.ह्वतो पुथ्रो**'[1]। वैदिक साहित्य में भी इसे विवस्वान् का पुत्र कहा गया है-

विवस्वन्तं हुवे यः पिता त[2]

यह पेशादातियन साम्राज्य का प्रथम शासक था। इसका काल प्राचीन ईरान का स्वर्ण युग था। इसके काल में शीत, गर्मी, ईर्ष्या, मृत्यु का सर्वथा अभाव था। पिता-पुत्र दोनों पञ्चदशवर्षीय होते थे। अहुरमज्दा ने सर्व प्रथम इसे धर्मप्रचार का कार्य सौंपा किन्तु इसने इस कार्य में असमर्थता व्यक्त की, तब उसे राज्यकार्य एवं प्रजापालन के लिए अहुरमज्दा ने नियुक्त किया। उसे 'ख्वॅरॅनह्' (राजकीय वैभव) की प्राप्ति हुई किन्तु अलीकवचनोपन्यास के कारण ख्वॅरॅनह् उसके पास से वारघ्न पक्षी के रूप में भाग गया। अब वह मरणधर्मा बन गया। यम के ही काल में ईरान में बहुत भीषण उपल-प्रपात हुआ था। उसने वर कर निर्माण कर अपने प्रजा को रक्षा की। इस प्रकार की कथा जलौघ के रूप में शतपथ ब्राह्मण में भी प्राप्त होती है। इसकी दो बहनों 'अॅरॅन वाक्' एवं 'संघवाक्' का उल्लेख अवेस्ता में हुआ है। पह्लवी साहित्य में यम क्षिएत 'जमशीद' के नाम से प्रसिद्ध है।

रङ्.हा – रङ्.हा एक नदी का नाम है। इसका वैदिक समरूप 'रसा' है। वेद की प्रमुख नदीयों में रसा प्रमुख है।[3] देवशुनी सरमा देवों के दौत्यसम्पादनार्थ रसा को पारकर पणियों के पास पहुँची थी-

कास्मै हितिः किं परितक्म्यमासीत्

कथं रसायाः अतरः पयांसि (ऋ० 10.108.1)

बुन्देहिश्न में इसे 'अरङ्.ग' कहा गया है। दर्म्सत्तर इसको टिग्रिस से समीकृत करते हैं।

1. अवेस्ता - यस्न 9.5
2. ऋग्वेद 10.135.3
3. मा वो रसानितभा कुभा क्रुमुर्मा वः सिन्धुर्निरीरमत्।

   मा वः परिष्ठात् सरयुः पुरीषिण्यस्मे इत सुम्नमस्तु वः।। (ऋ. 5/53/9)

वअेसकय – 'वएसक' परिवार के मुख्य का नाम था। उसी के वंशजों को 'वअेसकय' कहा गया है। इस कुल के सबसे महत्त्वपूर्ण व्यक्ति का नाम 'पिरान वेसाक' था जो शाहनामा में वर्णित अफ्रासियाब (अवेस्तीय फ्रङ्.रस्यान्) का मुख्य सेनापति था।

वरय पिषि· ह – यह एक झील का नाम है। इसे 'पिषिन' के साथ सम्बद्ध किया जा सकता है, जो काबुलिस्तान स्थित एक घाटी है। 'वइरि' से ही अंग्रेजी Valley पद विकसित है। बुन्देहिश्न 29.7 के अनुसार 'कॅरॅसास्प' इसके मैदान में गम्भीर निद्रा में सोया हुआ था। उसे अज़ी के वधार्थ जगाया गया।

विफ्रो नवाज़- यह अवेस्ता का ऐसा व्यक्तित्व है, जो सम्पूर्णतया मिथ लगता है। इसका संस्कृत समरूप 'विप्रो नवाज:' (कुशल नाविक) है। त्रैतान ने उसे पक्षी के रूप में हवा में फेंक दिया। वह तीन दिन व इतनी ही रात अपने गृह की ओर उड़ता रहा। तृतीय रात्रि की समाप्ति पर भी वह नहीं लौट सका, तब उसने 'अर्द्वी सूरा अनाहिता' से प्रार्थना की तब कहीं जाकर वह अपने गृह पहुँचा। विफ्रो नवाज़ की यह अवेस्तीय कथा किञ्चिद्वैभिन्य के साथ भुज्यु के वैदिक आख्यान से अद्भुत साम्य रखती है। तुग्रपुत्र भुज्यु समुद्र में बुरी तरह फँस गया। जीवनरक्षा का और कोई उपाय न देखकर उसने अश्विनों को आर्तस्वर से पुकारा।अश्विनों ने उसकी प्रार्थना को सुनकर, सौ डांडो वाले नाव को लेकर उपस्थित हुए (शतारित्रां नावमातस्थिवांसम् ऋ.) एवं भुज्यु के प्राणों की रक्षा की।

वीश्तास्प – वीश्तास्प भी कविकुलीय शासक था। प्रो० क्षेत्रेश चन्द्र चट्टोपाध्याय के अनुसार वीश्तास्प का संस्कृत समरूप व्युषिताश्व है (वेदावित्तप्रकाशिका भूमिका पृष्ठ-9)। इसके पिता का नाम 'अउर्वत्‌अस्प' (अर्वताश्व) था। ईरान में कवि वंशी वीश्तास्प के अतिरिक्त इसी अभिधान का एक और सम्राट् हुआ था, जो हखामनीष-कुलोत्पन्न था। उसके पिता का नाम 'अर्शाम्' (ऋषाम्) था, एवं उसका पुत्र 'दारयउश्' केवल ईरान का ही नहीं अपितु संसार के महानतम जनाधिपों में एक था। कवि वीश्तास्प इससे सर्वथा भिन्न व्यक्ति था। जरथुश्त्र ने कवि वीश्तास्प को प्रभावित करने के लिए अनेक प्रयत्न किया किन्तु वह सफल नहीं हुआ। तब उसने 'अइर्येन वएजह्' में दाइति (दिति) के तट पर अर्द्वी सूरा अनाहिता का यजन किया एवं उससे वीश्तास्प को अपने अनुकुल बनाने का वर माँगा-

आअत् हीम् ज़इध्यत

अवत् आयप्तम् दज़्दि मे

बङु.हि सॅविश्ते अरॅद्वी सूरे अनाहिते

यथ अज़ॅम् हाचयेने

पुथ्रॅम यत अउर्वतृ अस्पहे

तख्मॅम् कवअेम् वीश्तास्पॅम्

अनुमतअे दअेनयाइ

अनुख्तअे दअेनयाइ

अनुवर्श्तअे दअेनयाइ।

(अ.सू.यश्त्.105)

अन्य यजतों से भी उसने यही प्रार्थना की। यजतकृपा से वीश्तास्प जरथुश्त्र का शिष्य बन गया, एवं उसके धर्म को स्वीकार कर लिया। जरथुश्त्र द्वारा प्रवर्तित धर्म अब राज-धर्म घोषित हो गया, जिसके कारण जरथुश्त्र का धर्म खूब फूला-फला।

वीश्तास्प की धर्मसहचारिणी पत्नी 'हुतओषा' (सुतोषा) नओतर (नवतर) कुल की कन्या थी। वह भी नूतन जरथुश्त्र-धर्म के प्रति अति श्रद्धालु थी।

हओश्यङ्.ह- यह ईरानियों का प्रथम शासक था। एक सम्प्रभु राज्य एवं विधि निर्माण के कारण उसे 'परधात' कहा गया है। डॉ० हरिशङ्.कर त्रिपाठी जी के अनुसार 'परधात' का अर्थ है 'उत्कृष्ट विधिनिर्माता' (अवेस्ता कालीन ईरान, पृष्ठ 214)। इसी विशेषण के कारण उसके कुल नाम परधातकुल हुआ। परधात का पह्लवीरूपान्तर पशदात है, इसी लिए उस कुल के लिए अंग्रेजी में 'Pesdatınan Dynasty' शब्द प्रयुक्त है। उसने अनेक यजतों का यजन किया एवं उसे श्रेष्ठ साम्राज्य के स्वामी होने का आशीर्वाद मिला।

5

काग

'अ' कोश

अइर्यनाँम्- विशे., पु. सं. - आर्याणाम्

आर्यों का

ष. ए. व.

तु. प्रा. फा. अरिय, तु. अनार्य, हिन्दी-अनाड़ी

अइरिश्तम्- विशे., पु. सं. - अरिष्टम्

अहिंसित

नञ् + रिष् + क्त द्वि. ए. व. (प्रथमार्थ प्रयुक्त)

तु. रिष्, अंग्रेजी-Risk,

अइवि - अव्यय सं. अभि

आभिमुख्यार्थक उपसर्ग

अइवि-द्रुज़ँ्तो- क्रिया, सं. अभिद्रुहन्ते (अभिद्रुह्यन्ति)

क्षति न पहुँचायें, द्रोह न करें

अभि + द्रुह् + लट् (लिङ् के अर्थ में) प्र.पु.ब.व. (आत्मने)

तु. द्रुह्, अवे.- द्रुज्, प्रा. फा. दुरुज्, अंग्रेजी-Dodge

अ्विवन्यो- विशे., पु. सं. अभिवन्यः

विजेता (जीतने वाला)

प्र. ए. व.

अएवञ्हो- विशे. स्त्री. सं. एवस्वत्याः

गतिवती का, प्रवाहयुक्त का

ष.ए.व.

अओजनो- विशे. पु. सं. ऊचानः

बोलता हुआ, कहता हुआ

वच् + शानच्, प्र.ए.व.

अओख़्त- क्रिया, सं. अवोचत्

बोला

वच् + लुङ् प्र. पु. ए. व.

अओथ्र- संज्ञा, नपु. सं. अवत्रम्

अओथ्र - जूता

द्वि.ए.व.

अङ्हत्- क्रिया, सं. असत्

होवे

अस् + लेट् प्र. पु. ए. व.

अजम्- सर्व., सं. अहम्

मै

अस्मद् + प्र. ए. व.

तु., प्रा. फा. अदम्, अग्रेजी - I

अजातनाम् - वि.पु., सं. - अजातानाम्

अनुत्पन्न लोगों का

'न जातानामिति' नञ् - जन् - क्त ष. ब. व.

तु. प्रा. फा.- अजात

आ. फा.- आजाद

प्राचीन एवं आधुनिक फारसी में अर्थपरिर्वनवशात्

'अजात' एवं आजाद का अर्थ 'स्वतंत्र' हो गया है।

अञ्होस्च- सर्व. स्त्री., सं.- अस्याश्च

'इसका'

ष. ए. व.

अधकॅम्- संज्ञा, पु. सं. - अत्कम्

'लबादा'

द्वि. ए. व.

त्सिमर- योद्धा का सम्पूर्ण कवच

'अध्यत्कं कवये शिश्नथम् (ऋ.10.49.3)

पर सायण भाष्य 'अत्कमाच्छादकम्'

अत: सायण के अनुसार 'आच्छादक' अर्थ

[illegible]- संज्ञा, नपु०, सं० - अस्मन्यननाय

हम लोगों के बारे में सोचने के लिए

अधिकांश विद्वान इसको विशेषण मानकर इसका अर्थ 'विचार में सचेतस्क', 'भक्तिपूर्ण' आदि करते है, जो युक्तिपूर्ण नहीं है।

अनुख़्तॅअे- संज्ञा, स्त्री० सं० - अनूक्तये

अनुकूल बोलने के लिए

अनु + वच् + क्तिन् च. ए. व.

तु.- वच्, अं.- Voice, ग्री.- Vox

अनुमॅतअे- संज्ञा, स्त्री, सं- अनुमत्यै

'अनुकूल सोचने के लिए'

अनु-मन् + क्तिन् च. ए. व.

संस्कृत में अनुमति शब्द 'अनुज्ञा' अनुमोदन, स्वीकृति आदि अर्थों में प्रयुक्त हो रहा है।

तु. मन् > अं.- Mind

अनुमयनाँम्- संज्ञा स्त्री. सं - अनुमयानाम्

मेमनों से

यहाँ षष्ठी तृतीया के स्थान पर प्रयुक्त है, व. व.

अनुवर्श्तॅअे- संज्ञा, स्त्री सं- अनुवृष्टये

अनुकूल कार्य करने के लिए

अनु + वृज + क्तिन् - च. ए. व.

संस्कृत - वृज् (क्रियारूप में अप्रयुक्त) अवेस्ता वरॅज से ही आंग्ल क्रियापद 'Work' विकसित है।

तु. आ. फा. - वर्जिश् (अभ्यास, कसरत)

अन्दोस्च - संज्ञा. पु. सं- अन्धाश्च

अन्धे लोग

प्र. ब. व.

वृन्ध > अन्ध, तु. वृन्ध > अंग्रेजी- Blind

अपख़्ज़ार- संज्ञा पु. सं- अपक्षारः

नहर, नाले

प्र. ए. व.

अपख़्ज़ारनाँः- सं- अपक्षाराणाम्

षष्ठी बहुवचन

अपनोतमः - वि. सं- अपनुततम्

'सर्वाधिक ऊँचा

अपनुत > अपनो + तमप् द्वि. ए. व.

अपकवो- संज्ञा. पु. सं.- अपकवः

'कूबड़ा'

प्र. ए. व.

अप-कुभ् > कुप् > कुव् > कव

तु. सं- कुब्ज, तु.- कुप् > अं.- Peak

अपखओसक- पु. सं.- अपक्रोशका:

निन्दक, मिथ्यावादी, चीखने-चिल्लाने वाले

अप + क्रुश् + ण्वुल् प्र. ब. व.014

तु. क्रुश् > अंग्रेजी- Curse

वेद में उपर्युक्त 'निन्दक' अर्थ में अभिक्रोशक शब्द प्रयुक्त है। वा. सं- 30.20

अपस्करक- पु. सं- अपस्करका:

घृणापूर्ण

प्र. ब. व.

अपयेमि- क्रिया- सं- अपयामि

भाग जाऊँ, लेकर चला जाऊँ

अप + या + लट् उ. पु. ए. व.

(लट् लोडर्थे प्रयुक्त)

अब्दोतमे- वि.स्त्री सं- अद्भुततमे

'सर्वाधिक आश्चर्यमयी'

अद्भुत + तमप् + टाप् प्र. द्वि. व.

अमवइती- वि.स्त्री. सं- अमवती

'शक्तिशालिनी'

अम + मतुप् + ङीप् प्र. ए. व.

अमश्याँ- वि.पु. सं-अमर्त्यान्

मानवों से हीन

'न मर्त्यः इति अमर्त्यः तान्'

किन्तु यहाँ 'अविद्यमानाः मर्त्याः यत्र' इस अर्थ में प्रयुक्त

द्वि. ए. व.

तु.- मर्त्य > आ. फा.- मर्द, प्रा. फा.- मर्तिय्

अयँतम्- वि.पु. सं- अयन्तम्

'जाते हुए'

अय् + शतृ - द्वि.ए.व.

यद्वा- 'आयन्तम्' आ + अय् + शतृ - द्वि. ए. व.

आते हुए

अॅरॅज़तम्- संज्ञा, न., सं- रजतम्

'चाँदी'

ऋज् (सफेद होना) से विकसित

तु. लै.- Arguo

तु. रजतम्, लै.- Argentum

अरॅज़्वो- सं, पु. सं- ऋज्वः

सरल, सीधा

ऋज् (सरल होना) से विकसित

तू - Regere (सरल)

अंग्रेजी - Right

सम्बो. ए. व.

ॲरॅज्वइथ्यो- विशे., स्त्री. सं- 'ऋजुवत्या:'

ऋजुवती-सारल्योपेता

ऋजु + मतुप् + ङीप् ष. ए. व.

अर्ष्णाँम्- वि.पु. सं- ऋषणाम्

वेगशाली

'ऋषन्' पुरुषत्वसूचक शब्द है

ऋष् गतौ > ऋषन् ष. ब. व. (तृतीयार्थ प्रयुक्त)

अर्शुख़्धअेइब्यस्- विशे. स्त्री. सं- ऋजुक्ताभ्य:

ठीक से बोली गयी

'सुष्ठु उच्चरित

सरलता से बोली गयी

ऋजु - वच् + क्त + टाप् + भ्यस् (तृतीयार्थ प्रयुक्त)

ऋजु, लै.- Regere, अं.- Right

अरॅद्राइ- वि.पु. सं- ऋध्राय (रध्राय)

दानी, धर्मात्मा

ऋध् - रक् - चतु. ए. व.

तु. यो रध्रस्य चोदिता य: कृशस्य (ऋग्वेद 2.13.6)

सायण - रध्रस्य = समृद्धस्य

अरमअेश्तो- वि. स्त्री सं- रमिष्ठा:

'स्थिर' 'निश्चल'

यह शब्द 'रम्' धातु से विकसित है।

रम् धातु का 'स्थिर होना' या 'स्थिर करना' अर्थ में प्रयोग वेद में भी मिलता है -

यः पर्वतान् प्रकुपिताँ अरम्णात् (ऋग्वेद 2.12.2)

तु-रम् > अंग्रेजी- Rest

अवअेनत्- क्रिया, सं-अवेनत्

देखा

वेन् > वअेन् (अवेस्ता) देखना + लङ्. प्र. पु. ए. व. (परस्मैपद)

तु. आ. फा.- बीन

आ. फा.- हकबीन (सत्यद्रष्टा)

बारीकबीन (सूक्ष्मद्रष्टा)

अवत्- सर्व. नव. सं- अवत्

वह

प्र. ए. व.

तु प्रा. फा.- अवत्

अवथ्- अव्यय सं- अवथा

'इस प्रकार'

प्रा. फा.- अवथा

तु. संस्कृत- 'अन्यथा, इतरथा' (प्रकारवचने थाल् पा. 5.3. 23)

अव बरइति- क्रिया सं- अवभरति

धारण करती है, भरती है

अव + भृ + लट् + प्र. पु. ए. व.

'आपो हमथ अवबरति' का अर्थ है- जल सदैव भरा रहता है।

तु- भृ > अं. Bear

अवबरॅ॑ते - क्रिया, सं- अवभरन्ते

प्रवाहित होती है

अव-भृ-लट् प्र. पु. व. व.

'आत्मनेपद'

अवोइरिस्यात्- क्रिया- सं- अवात्स्यर्त्

'लौटा'

वृत् . लड. - प्र. पु. ए. वचन

अशअओजस्तमाँम्- वि. स्त्री अत्योजस्तमाम्

'सर्वाधिक ओजस्वी'

अत्योजस् + तमप् + टाप् द्वि. एक. व.

अश्तो-कानम्- वि.पु., सं. अष्टकर्णम्

'अष्टौ कर्णाः छिद्राः यस्य तम्'

आठ छिद्रों वाले

तु-अश्त (सं-अष्ट) अंग्रेजी Eight ज. Echt ग्री. Oto

अश्त-कओज़्दाँम्- वि.स्त्री, सं-अष्टखेदिम्

अष्टौ खेदयः रश्मयः यस्याः ताम्

आठ रश्मियों वाले

द्वि. ए. व.

अश-पचिन- वि.पु. अति-पचिन

अत्यधिक पकाने वाला

अश-बओउर्व- सं- अतिभूर्यः

अत्यधिक, अतिशय

प्र. ए. व.

अस्ति- क्रिया, सं- अस्ति

'है'

अस्-लट् प्र. पु. ए. व.

तु. अं. Is, ज.-Ist, ग्री.-Esti, लै-Est

प्रा. फा.-अहतिय्

अस्नाअत्- संज्ञा नपु., सं. अह्नः

अस्न >अह्न 'दिन'

प. ए.व.। मिथ्या सादृश्य के कारण आत्, यथा प्राकृतों में अग्नेः का अग्गिस्स

अस्पानाँम्- संज्ञा, पु., सं-'अश्वानाम्'

अश्व-घोड़ा

अश्+क्वन्-षष्ठी बहुवचन

सं-अश्व (अस्प) प्रा. फा. - अश

लै. - Equis

अस्पअेषु- अश्वेषु

सप्तमी बहुवचन

अस्पायओधम्- विशे. पु., सं.-अश्वायोधम्

'अश्व पर चढ़कर युद्ध करने वाला'

द्वि. एकवचन

अस्पो-स्तओयेहीश्- वि.पु. सं.-अश्वस्तोयेभिः (अश्वस्थूलैः)

अश्व के समान अथवा उससे भी घने या बल्वान्

तृ. ब. व.

अस्त्रावयत्-गाथो- वि.पु. अस्त्रावयद्गाथः

गाथाओं को न सुनाता हुआ, गाथाओं का पाठ न करने वाला

अस्रावत् - न + श्रु + णिच्-शतृ (समास का पूर्व पद)

अष-अमयो- वि.स्त्री, सं- अत्यमायाः

अत्यधिक शक्तिशालिनी का

षष्ठी एक वचन

अषओनीम्- वि. स्त्री. सं. ऋतावरीम्

ऋतवती को

द्वि.ए.व.

ऋतावरी दिवो अर्कैरबोध्या

रेवती रोदसी चित्रमस्थात (ऋ०- 3.61.6)

सायण-ऋतावरी = सत्यवती

अषवॅनम् अषडम्- वि. पु., सं- 'ऋतवन्तम्'

ऋतसम्पन्न, सत्यात्मा

ऋत + मतुप् + द्वि. ए. व.

अषवनय- वि. स्त्री सं- ऋतावर्याः

ऋतवती का, सत्यवती का

'ऋतावरी' षष्ठी एक वचन

अहुरोङ्हो- संज्ञा, पु., सं.- असुरासः

'असुर लोग' किन्तु यहाँ अर्थ है

असुरधर्म को मानने वाले

असु + रक् + प्र.ब.व. असुक् [illegible]

(आज्जसेरसुक्)

तु.वेद-असुर, अवेस्ता-अहुर, प्रा. फा. - अउर

अहुरोत्कअेषाम्' विशे. स्त्री, सं.-असुर-चिकीतुषीम्

'असुर के नियम को मानने वाली'

चिकितुषी- कित् + क्वसु + द्वि.ए.

तु. चिकीतुषी प्रथमा यज्ञियानाम् (ऋग्वेद-10.125.3)

अहुरधाताँम्- वि. स्त्री सं- असुरहिताम्

'असुर द्वारा स्थापित'

'असुरेण हिता या ताम्'

द्वि.ए.व.

अह्मि- क्रिया, सं-अस्मि

'हूँ'

अस्-लट् उ. पु. ए. व.

तु- अस्मि (अह्मि) अंग्रेजी - am

आअत्- अव्यय, सं- 'आत्' (अतः)

इसके बाद

पञ्चमी प्रतिरूपक

आइधि- क्रिया. सं- एहि

'आओ'

आ + इ + लोट् म. पु. ए. व. पर.

आँख़्नो- संज्ञा, पु., सं- आक्षाण:

'लगाम्'

प्रथमा द्वितीयार्थ प्रयुक्त

आजातयो- वि. स्त्री. सं- 'आजाताया:'

उत्पन्न (उच्च कुल में)

आ-जन् + क्त + टाप् षष्ठी ए. व.

आतचइति- क्रिया सं-आतचति

जाती है, प्रवाहित होती है

आ + तच् + लट् प्र. पु. ए. व. (पर.)

आथ्रवनो- संज्ञा, पु. सं- अथर्वा (अथर्वन्)

अथर्वन्, पुरोहित

प्र. ए. व.

आथ्व्यानोइश्- संज्ञा, पु., आप्त्यायनि: (आप्त्यायन:)

'आप्त्य (आथ्व) के कुल में उत्पन्न'

प्र. ए. व.

आधू-फ़्राधनॉम्- विशेषण, स्त्री, सं- आयु:प्रवर्धिनीम्

'आयुः प्रवर्धयति या सा आयुः प्रवर्धिनी ताम्'

द्वि. ए. व.

आपो-संज्ञा, स्त्री, सं.- आप:

जल

अप् + प्र. बहुवचन

तु- आ.फा. आब (जल)

आयफ्तम्- संज्ञा, नपु. - सं- आप्त्यम्

'वरदान'

आप् धातु से व्युत्पन्न द्वि.ए.व.

तु. आप् - अंग्रेजी obtain, option

तु. आयप्तम्, आ. फा : फायदा

आस- क्रिया सं- आस

'हुआ, था'

अस् + लिट् + प्र. पु. ए. व.

आसु-अ[illegible]- वि.पु. सं-आश्वश्वतमः

आशुः अश्वः यस्य स आश्वश्वः

अतिशयेन आश्वश्वः आश्वश्वतमः

सर्वाधिक तेज अश्वों वाला, तीव्रतम अश्वों वाला

प्र. ए. व.

इध- अव्यय सं-इह

यहाँ

तु. पालि-इध, इध नन्दति पेच्च नन्दति (धम्मपद)

इमाो- सर्व. स्त्री सं-इमाः

ये सब

इदम् स्त्री प्र. बहुवचन

इरिथॅ ँ्तम्- वि. नपु. सं- अर्थितम्

काम्य, सम्प्रभु (क्षत्रं का विशेषण)

अर्थ + क्त + द्वि. ए. व.

ईश्तीम्- संज्ञा, स्त्री — सं-इष्टिम्

'यजन'

यज् + क्तिन् + द्वि. एकवचन

वेदवत् दीर्घता

उग्रम्- — विशेः नपु., सं- उग्रम्

बलवान्, शक्तिशाली

उची समवाये-रन् द्वि. ए. व.

वस्तुतः उग्र को एवंविध निष्पन्न मानना उचित होगा-

वज् > उज् > उग् + रन् = उग्र

तु. लै. Angust (शक्तिशाली)

उज्बइरे- क्रिया — सं- उद्भरे

प्रवाहित किया, नीचे लाया

उद् - भृ - लट् उ. पु. ए. व.

यहाँ व्यत्ययेन प्र. पु. के स्थान पर उ. पु.

उज्द्वाँनयत्- क्रिया, — सं- उदधूनयत् (उदधुनोत्)

ऊपर फेंक दिया, ऊपर हवा में उड़ा दिया

उद्- धू कम्पने + लङ्. प्र. पु. ए. व. (णिच् निरर्थक)

तु - धू - Haunt (धुनोति)

उत - अव्यय — सं- उत

और, इस प्रकार

तु-प्रा. फा.-उता, अंग्रेजी-And, ज-Und

उपइरि- अव्यय, सं-उपरि

'ऊपर'

तु. अंग्रेजी-Up, Upper, ज. Uber

उपज़्बयत्- क्रिया, सं- उपाह्वयत्

बुलाया, पुकारा, आह्वान किया

उप ह्वेञ् + लङ्. प्र. पु. ए. व.

उप-तचत्- क्रिया, सं-उपातचत्

आयी, पहुँची, गयी

उप + तच् + लङ्. प्र. पु. ए. व.

उपरतातो- संज्ञा पु. सं- उपरितातः

उच्चता, श्लाघनीयता

प्रथमा एकवचन

उपस्ताम्- संज्ञा, स्त्री, सं- उपस्थाम्

द्विव्य सहायता, अलौकिक सहायता

द्वि. ए. व.

प्रा. फा. में भी 'उपस्ता' शब्द उपर्युक्त अर्थ में ही प्रयुक्त है- अउर मज़्दा मइय् उपस्तॉं अबर् (दारयवउश् प्रा. फा. शि. ले. प्रकोष्ठ)

उर्वापहे-विशे., पु., सं- उर्वापस्य (उर्वपसः)

'प्रभूतजल वाले'

षष्ठी एकवचन

उस्च - अ. सं-उच्चैः

ऊपर की ओर, शक्तिपूर्वक

यद्वा क्रि. वि. 'उच्चम्'

उस्कात्- संज्ञा, नपु.- सं-उच्चात्

ऊपर से

पञ्चमी एक वचन

कइनीनो- संज्ञा, स्त्री, सं-कनीना:

कन्यायें

तु. कन्याया: कनीन च (पा. 4.1.116)

लौकिक संस्कृत में 'कनीना' शब्द का स्वतंत्र प्रयोग नहीं उपलब्ध होता अत: पाणिनि ने 'कन्या' शब्द को 'कनीन' आदेश किया (कानीन शब्द को सिद्ध करने के लिए)। वेद में कनीनिका शब्द स्वतंत्र रूप से उपलब्ध है-कनीनकेव विद्रधे द्रुपदे नवे अर्भके(ऋ-4.32.23)

को- सर्व., पु. सं-क:

कौन

किम् प्र. एकवचन

कञ्हे- सर्व., पु. सं- कस्य

किसका

किम्- षष्ठी एकवचन

कन- सर्व., पु., सं- केन

किससे, किसके द्वारा

किम्- तृतीया एक वचन

कम्- सर्व., पु. सं- कम्

किसको

किम्- द्वि. ए. व.

करनो- संज्ञा, पु. सं-कर्णा:

'किनारे'

प्र. बहुवचन

कॅरॅनओत्- क्रिया, सं- अकृणोत्

'किया'

कृ + लङ्. + प्र. पु. ए. व.

अवेस्ता में लङ्., लुङ्. के अ का लोप हो जाता है।

तु. प्रा. फा. अकनउश् (अकृणोः)

कॅरॅनवानि- क्रिया - सं-कृणवानि

करूँ, कर दूँ

कृ + लोट् उ. पु. एकवचन

कॅरॅँतत् - क्रिया, सं- अकृन्तत्

'काटा' काट दिया

कृती छेदने + लङ्. प्र. पु. एकवचन

कॅरॅतम्- संज्ञा, नपु. सं- कृतम्

किया गया

कृ + क्त एक वचन

प्रा. फा. कर्तम्

कश्चित्- सर्व. पु. कश्चित्

कोई

कः - किम् प्र. ए. व.

चित् (निपात) प्रा. फा. चिश्

कह्माइ- सर्व. पु. सं- कस्मै

किसे, किसके लिए

किम् चतुर्थी एकवचन

कॅहर्प- संज्ञा, स्त्री. सं-कृपा

शरीर से

कृप् + तृतीया एकवचन

तु corpe (अंग्रेजी)

क्षअेतो- फ्राधनॉम, संज्ञा, स्त्री., सं-क्षियत्प्रवर्धिनाम्

राज्य को बढ़ाने वाली

तु. अवेस्ता - क्षअेत > प्रा. फा. ख़्शायथिय

जर्मन- Koing, अंग्रेजी- King

क्षथ्रम्- संज्ञा, नपु. सं- क्षत्रम्

क्षत्र

तु क्षत्र > अंग्रेजी - City

प्रा. फा. ख्शश्श

क्षथ्र > शह्र > शहर (आ. फा.)

क्षथ्राइ- संज्ञा, नपु. सं- क्षत्राय

चतुर्थी एकवचन

क्षयम्न- विशे., स्त्री. सं क्षयमाणा

शासन करती हुई, समर्थ होती हुई

क्षि शासने (आत्मनेपद) शानच् + टाप्

पु. ए. व.

क्षयेते- क्रिया सं- क्षयते

शासन करता है

क्षि शासने + लट् प्र. पु. एकवचन

आत्मनेपद

तु. सेदु राजा क्षयति चर्षणीनाम्

क्षथ्रीम्- संज्ञा, पु. सं. स्त्रीम्

'स्त्री को'

स्त्री- द्वि. ए. व.

क्षथ्रीनाँम्- सं स्त्रीणाम्

षष्ठी एकवचन

क्षप्नाअत्- स.- क्षपाः

'रात्रि'

पञ्चमी प्रतिरूपक अव्यय

तु. प्रा. फा.- ख़्शप्, आ. फा.- शब (शबनम)

क्षोइथ्नीम्-विशे., स्त्री. सं.-छवित्रीम्

'सौन्दर्ययुक्ता'

द्वि. एकवचन

क्षुद्रो- संज्ञा; पु., स. क्षुद्रम् (क्षुद्रः)

'वीर्य'

प्रथमा एकवचन (द्वितीया के स्थान पर व्यत्ययेन प्रयुक्त)

क्ष्वश्-अषीम्-विशे.पु., सं-षडक्षम्

षट् अक्षीणि यस्य तम्

'छः आँखों वाले'

तु.सं.- षष्, ज.-Hex, अंग्रेजी- Six

तु.सं.- अक्षि, प्रा. फा.- अश

लै.-Oculus, अंग्रेजी- Eye

ख़्वइनि-स्तॅरॅतम्- विशे. नपु., सं-स्वनिस्तृतम्

'सुन्दर विस्तर युक्त'

'अच्छी प्रकार बिछा हुआ'

प्र. एकवचन

स्तॅरॅत > स्तृञ् आच्छादने + क्त, तु. सं- विस्तर

ख़्वनत्-चख- विशे. पु., सं- स्वनच्चक्रः

'स्वनन्ति चक्राणि यस्य सः'

'ध्वनियुक्त चक्रों वाला'

'ध्वनियुक्त रथों वाला'

तु- स्वन् > अंग्रेजी - Sound

ख़्वन (अवेस्ता) > हिन्दी - खनकना, खनखनाना

तु सं.- चक्र > अवेस्ता - चख आ. > फा. चर्ख (चर्खा)

अंग्रेजी, Cycle, Circle

ख़्वापइथीम्- विशे. नपु., सं- स्वापत्यम्

'अपने'

'स्व स्वामित्व वाले'

द्वि - एकवचन

'यथा आधिपत्यं तथा स्वापत्यम्'

तु. सं- स्वतः > अवेस्ता - ख़्वतो > आ. फा. खुद

स्व > अंग्रेजी- Sui (Cide) सं- स्व > प्रा. फा. उव

खुज़्दनाम्- विशे. सं - क्रुद्धानाम्

'कठिन'

षष्ठी एकवचन

अवेस्ता में क्रुध् के समानान्तर खउज् या खओज् धातु का अर्थ 'कठिन होना' भी है। तु. खुज़्द > अंग्रेजी- Hard

गएथ्याइ- संज्ञा, स्त्री, सं- गयत्यै यद्वा गयथायै

'जीवजगत् के लिए'

शरीरिजगत् के लिए

चतुर्थी एकवचन

तु-वेद-वास्तोष्पते प्रतरणो न एधि गयस्फानो गोभिरश्वेभिरिन्दो

(ऋ. 7.54.2)

निघण्टु के अनुसार 'गय' शब्द के कई अर्थ है-

गृह (3.4) धन (2.10) अपत्य (2.2)

वस्तुतः 'गएथा' शब्द की व्युत्पत्ति एवंविध होगी-

जीव् > गी > गय > गयथा (अस्तित्व, संसार, जीवजगत्)

तु-आ. फा.- जहाँ (यथा- सारे जहाँ)

गएथाव्यो- सं- गयथाभ्यः

चतुर्थी बहुवचन

गएथाम्- गयथाम्

द्वि. ए. व.

गयथनॉम्- सं- गयथानाम्

षष्ठी बहुवचन

गअेथो-फ़्राधनाँम्- विशे., स्त्री सं- गयथाप्रवर्धिनीम्

जीव जगत् को बढ़ाने वाली

फ़्राधनाँम्- प्रवर्धिनीम् > प्र + वृध् - ल्युट् ङीप्

द्वितीया एकवचन

गओमवइतीव्यो, विशे. स्त्री. सं-गोमतीभ्यः

गोमांस से, गोदुग्ध से, दुग्धयुक्त पदार्थ से

विशेषण संज्ञावत्- प्रयुक्त

गो + मतुप् + ङीप् पञ्चमी एकवचन (तृतीयार्थ प्रयुक्त)

तु - गो > अंग्रेजी- Cow, आ. फा.- गोश्त

गओषावर- संज्ञा, पु. सं- घोसावरम्

'कर्णावतंस'

द्वि. एकवचन

गर॑वॉन्- संज्ञा पु. सं- गर्भान्

'गर्भो को'

द्वितीया एकवचन

गातु- संज्ञा, पु. सं - गातुम्

स्थान मार्ग विस्तार

द्वितीया एकवचन

तु प्रा. फा.- गातवा 'क्षेत्र में'

वेद में 'गातु' 'मार्ग' के अर्थ में प्रयुक्त है-

गातुं कृणवन्नुषसो जनाय (ऋग्वेद 4.51.1)

तु-गातु > अंग्रेजी- Gate

(च)

च - निपात, सं. च

'और'

तु. च. लै- Que

चथ्रु-करन-वि. चतुष्कर्णम्

चार कोणों वाले, वर्गाकार

द्वि. एकवचन

तु - करन, अंग्रेजी- Corner, Core

आ. फा.- किनारा

चथ्रुगओषम्- वि. सं- चतुर्घोषम्

चार कानों वाले

चत्वारो घोषाः यस्य तम्

द्वि. एकवचन

चथ्वर॑-सतॅम्-संख्या सं-चत्वारिशत्

चौवालिस

चथ्वर॑-प.तिस्तान- विशे. पु. सं-चत्वारः प्रतिष्ठानाः (चतुष्प्रतिष्ठानाः) (चतुष्पादाः)

'चार पैरों वाले'

अहुरजगत् के प्राणियों के पैर का वाचक पद 'पइतिस्तान' एवं दअेवजगत् के प्राणियों के पैर का वाचक शब्द 'पाध' (पाद) है।

प्रतिष्ठत्यनेन इति प्रतिष्ठानम्।

प्र + स्था + ल्युट् प्र. ब. व.

चथ्वारो- संख्या पु. सं- चत्वारः

'चार'

चतुर् + प्र. बहुवचन

चतुर् – अंग्रेजी- Four, जर्मन- Veer

चरमो– क्रि. वि., सं- चरमः (चरमम्)

पूर्णरूप से

यहाँ क्रिया विशेषण में प्रथमा विभक्ति प्रयुक्त हैं,

संस्कृत में द्वितीया प्रयुक्त होती है।

चराइतिश्– संज्ञा, स्त्री. सं – चिरण्टी

'युवती'

प्रथमा एकवचन

चिथ्रम्– संज्ञा, नपु., सं – चित्रम्

पुत्र, वंशज, पहचान

चित् + रक् प्र. ए.व.

तु. – चिथ्र > अंग्रेजी - Child

चिथ्र > पह्ल.– चिह्र > आ. फा.– चेहरा

(ज)

जइध्यत्– क्रिया, सं-अगदत्

माँगा, याच्ञा की

गद् + लङ्. प्र. पु. एक वचन (परस्मै)

(गणव्यत्यय)

जइध्यँतो– वि. पु. सं- गदन्तः (गदन्)

माँगते हुए, प्रार्थना करते हुए

गद् + शतृ प्र. बहुवचन (एकवचन के स्थान पर बहुवचन
यथा-वेद-अनृक्षरा ऋजवः सन्तु पन्थाः)

जइध्य ँ्ताइ- वि.पु. सं-गदते

प्रार्थना करने वाले के लिए

गद् + शतृ चतुर्थी एकवचन

जइध्यो ँ्ते- क्रिया, सं- गदन्ते

माँगती है

गद् + लट् प्र. पु. ब. व. (आत्मनेपद)

जओतारम्- संज्ञा, पु. सं- होतारम्

'होता को'

हु + तृच् द्वि एकवचन

जओथ्रानॉम् संज्ञा नपु. सं- होत्राणाम्

होत्रों का,

'जओथ्र पवित्र जल एवं मन्त्र का वाचक है

षष्ठी ब. व.

तु. जओथ्र > आ. फा.- जौहर

जओथ्राब्यो- सं- होत्राभ्य

मन्त्रों से, होत्रों से, आहुति से

पञ्चमी ए. व. (तृतीयार्थ प्रयुक्त)

जओथ्रोबराइ- संज्ञा, पु. सं. 'होत्रभराय'

होत्रं भरतिति होत्रभरस्तस्मै

चतुर्थी ए.व.

ज़इरि- पार्ष्नॅम् - वि.पु. सं.- हरिपार्ष्णम्

हरी एड़ी वाले

द्वि. ए. व.

तु. ज़हरि, अंग्रेजी- Green, Yellow

ज.- Gelb

ज़फ्रहे- वि. पु., सं- गभ्रस्य

'गहरा'

षष्ठी एकवचन

जॅमा- संज्ञा, स्त्री सं- ज्माम्

'पृथ्वी'

द्वि. ए. व.

तु. आ. फा.- जमीं

जरनिम्- संज्ञा, नपु., सं- हिरण्यम्

स्वर्ण

घ्वृ > हिर् > हिरण्य प्र. एकवचन

पा. के अनुसार हर्य् + कन्यन्

(हर्यतेः कन्यन् हिर् च, उ. सू. 5.7.22)

घ्वृ > Gold

हिरण्य > प्रा. फा. दरनिय

आ. फा.- दीनार, दीनार गुप्त युग की भी एक मुद्रा थी।

तु. लै. Denarius

जरनअेनम्- वि. सं-हिरण्ययम्

सुनहरा

द्वि. एकवचन

जज़्वोड.ह-विशे. पु. सं- जिगीवांसः

जीतने वाले

जि. + क्वसु प्र. ब. व.

जव- क्रिया, सं- जव

दौड़ो

जव् + गतौ + लोट् म. पु. एकवचन

जवनो -सास्त- वि. स्त्री, सं - ह्वानेशास्ता

बुलाये जाने पर निर्देशन करने वाला

यद्वा- आह्वान में निर्दिष्ट

प्रथम अर्थ के अनुसार व्युत्पत्ति ह्वाने + शास् + तृच्

(ड.ीप् का लोप, व्यत्ययेन पुंवत्)

द्वितीय अर्थ के आधार पर ह्वाने + शास्+क्त + टाप्

(अलुक् समास)

ह्वाने - ह्वेञ् + ल्युट् + सप्तमी एकवचन

जयॅनम्- संज्ञा नपु., सं- हायनम्

'सर्दी में'

द्वि. ए. व. (सप्तम्यर्थ)

ज ॅ्तउश्च- संज्ञा, पु. सं- जन्तोः

कस्बे की यद्वा देश की

षष्ठी एकवचन

जातनाँम्- वि.पु. सं-जातानाँम्

उत्पन्न होने वालों का

जन् + क्त षष्ठी बहुवचन

तु लै. - Genus

जात - ग्री.- Gnotos आ.फा.- ज़ाद

शौरेसेनी प्राकृत- जाद

जावर्र- संज्ञा, पु. सं - जवम् (जावरम्)

गति, शक्ति

द्वि. एकवचन

तु. आ. फा.- ज़बर, ज़बरन

ज़िजनाइंतिश् - वि. स्त्री, सं- जनयन्तीः (जनयन्त्यः)

उत्पन्न करती हुई स्त्रियाँ

जन् + शतृ + ङीप् प्र. बहुवचन

तु. वेद- यूयं ही देवीः

ज्रयो- संज्ञा, नपु., सं ज्रयः

समुद्र

ज्रयस् > आ. फा.- दरिया (नदी) 'अर्थपरिवर्तन'

ज्रयङ्हो- सं- ज्रयसः

समुद्र का

षष्ठी एकवचन

ज़याइ- सं - ज्रयाय (ज्रयसे)

चतुर्थी एकवचन (षष्ठ्यर्थ प्रयुक्त)

तु - षष्ठ्यर्थे चतुर्थी वक्तव्या (वा. 2.3.72)

ज़ूने- संज्ञा, पु. सं- ज़्रवणे

समय पर

ज़्रवन > हिन्दी- जून, अं- June (मास विशेष)

ज़्रवन > आ फा.- ज़माना (युग)

उपर्युक्त सभी शब्द कालवाचक हैं। अर्थवैभिन्य अर्थपरिवर्तन वशात् है।

सप्तमी एक वचन

तख्मो- संज्ञा, पु., सं - तख्मः

वीर

प्र. एकवचन

तत्- सर्व. नपु. सं- तत्

वह

तद् प्र. एकवचन

तु. तत् ,अं. That

तँ्चिश्तम्- विशे. पु., सं- तञ्चिष्ठम्

सर्वाधिक शक्तिशाली, सर्वाधिक वीर

'सबसे कठिन'

तञ्च् + इष्ठन् द्वि. ए. व.

तनुब्यो- संज्ञा, स्त्री, सं. - तनुभ्यः

शरीरों के लिए

तनु + च. ब. व.

तनु-माँथ्रो- विशे. पु. सं - तनुमन्त्रः

'तनुः मन्त्रः यस्य सः'

मन्त्र - विग्रह, विग्रहवान् मन्त्र

प्र. ए. व.

तमॅड्.हो- विशे. पु. सं. तामसः

तामस, तमोगुणी, मानसिक अन्धकार से ग्रस्त

'तमोऽस्त्यस्य'

तमस् + अण् प्र. ए. व.

तमड़.हु ँतम्- विशे. पु., सं - तमस्वन्तम्

'तमोगुणी को'

तमस् + मतुप् द्वि. ए. व.

तरो- अव्यय, सं- तिरस्

टेंढ़ा, आर-पार, दूर

तु. तिरश्चीनो विततो रश्मिरेषाम् (ऋ. 10/129/5)

तु. तरो, अंग्रेजी Tele

तातो- विशेषण, स्त्री, सं- ताताः

मातृरूपिणी

वेद में तत पितृवाचक शब्द है- कारुरहं ततो भिषक् (ऋग्वेद)

किन्तु चूँकि यह शब्द 'आपः' का विशेषण है, अतः प्रसङ्.गानुकूल इसका अर्थ 'मातृरूणिणी ही उचित है। 'तात' शब्द भी लौकिक संस्कृत में 'पितृवाचक' है- जीवत्सु तातपादेषु (उत्तररामचरितम् 2/19)

रिचेल्ट इस शब्द को 'पत्' से निष्पन्न मानते हैं। उनके अनुसार मूल शब्द प्तातो (पतिताः) रहा होगा। 'प' का लोप हो गया।

ताँम्- सर्व. स्त्री. सं- ताम्

'उसको'

तत् द्वि. एकवचन

तउर्वय ँत - विशे. पु., सं- तूर्वन्तः

हिंसित करते हुए

तूर्वी हिंसायाम् + शतृ प्र. ब. व.

तूम्- सर्व. सं. - त्वम्

'तुम'

युष्मद् प्रथमा एकवचन

तु - अंग्रेजी - Thou, Thee युष्मद् - ye, you

त्वअेषो- संज्ञा, पु., सं- द्वेषः

द्वेष, जलन

द्विष् + घञ् प्र. ए. व.

त्विष्वतॉम् - विशे. पु., सं- द्वेषवताम् यद्वा द्विषताम्

'द्वेषियों का'

द्वेषवताम्-द्वेष + वतुप् षठी बहुवचन

द्विषताम् -द्विष् + शतृ षष्ठी बहुवचन

थ्रओश्त- विशे. पु., सं-त्रस्तः

भयभीत

त्रस् + क्त एकवचन

तु. त्रस् - अंग्रेजी-Terror, लै-Terreo

थ्राफ़्स- संज्ञा, स्त्री, सं- तृप्तिः

सन्तुष्टि

तृप् + क्तिन् प्र. एकवचन

थ्रि-अयरम्- क्रि. वि. सं- अयरम्, 'त्र्ययरम्'

तीन दिन तक

त्रि- तु-अंग्रेजी-Three, जर्मन-Drei

तु.-अयर > अंग्रेजी - year (अर्थपरिवर्तन)

तु. अयर > सं - परारि (अरि वर्षवाचक)

थ्रि-कॅमॅरॅधम्- वि. पु., सं-त्रिकमूर्धानम्

'तीन शिर वाला'

द्वि. एकवचन

थ्रिक्षपरॅम्- क्रि. वि., सं. त्रिक्षपाः

तीन रात तक

तु क्षपाः > अवेस्ता - क्षर्पा, आ. फा. शब

थ्रिज़फ़ो- विशे. पु., सं त्रिजृम्भणः

तीन मुख वाला

प्र. एकवचन

तु. आ. फा. ज़फर (मुख)

त्रिजफनः- वि. पु. सं- त्रिजृम्भणम्

द्वि. एकवचन

थ्रिसतनॉम्- संख्या, स्त्री, सं-त्रिंशताम्

तीस का

त्रिंशत् - षष्ठी बहुवचन

तु. त्रिंशत् - Thirty

थ्वाँम्- सर्वनाम, सं- त्वाम्

तुमको, तुमसे

युष्मद् द्वि. एकवचन

थ्वक्षम्मो- वि. पु. सं-त्वक्षमाणः (त्वरमाणः)

शीघ्रता करता हुआ

त्वक्ष् + शानच् प्र. एकवचन

संस्कृत में त्वक्ष् (निर्माण करना)

दइधे- क्रिया, सं- दधे

'धारण करूँ'

धा-लट् उ.पु. ए. व. (आत्मने.)

दअेनयाइ- संज्ञा, स्त्री, सं- धेनायै

धर्मार्थ, धर्म के लिए

धेना चतुर्थी ए.व.

तु. आ. फा. दीन

दअेवनाँम्- संज्ञा, पु. सं- देवानाम्

दुरात्मओं का

षष्ठी बहुवचन

दअेवीम्- वि. स्त्री. सं-देवीम्

देवों (दुरात्माओं) से सम्बद्धा

द्वि. ए. व.

दअेवइव्यो- संज्ञा, पु. देवभ्य

दुरात्माओं से

देव > दअंव - पञ्चमी बहुवचन

दअेवस्नॉम्- वि. पु., सं- देवयज्ञानाम्

देवोपासकों का

षष्ठी एकवचन

दक्षतवँत- वि.पु., सं-दक्षतवन्तः

चिह्नयुक्त लोग, दागदार लोग

दक्षत + मतुप् - प्र. बहुवचन

तु - दक्षत, आ. फा. - दाग

अवदक्षत- वि. पु., सं- अवदक्षताः

चिह्न रहित

प्र. बहुवचन

दख्युनाम्- संज्ञा, पु., सं-दस्यूनाम्

जनपदों का, देशों का

दस्यु वेद में कुत्सितार्थक है, किन्तु अवेस्ता में स्थानवाचक। पारस्परिक द्वेषवशात् अर्थपरिवर्तन हुआ।

दख्यु (दह्यु) प्रा. फा. दह्यु, तु. दस्यु, अंग्रेजी Dis (trit)

दथुषत्- वि. पु., सं तक्षतः

तक्षन् - (निर्माता)

षष्ठी एकवचन

दधाइति - क्रिया, सं-दधाति

धारण करती है, युक्त करती है (प्रासंगिक अर्थ)

धा-लट् प्र. पु. ए. व. (पर.)

दध्वो- वि. पु., सं - दाश्वान्

प्रदाता

दा + क्वसु प्र. ए. व.

दद्दि- क्रिया, सं- देहि

दो

दा-लोट् म. पु. ए. व.

तु. दा > अंग्रेजी- Donate

दधात्- क्रिया, सं- अददात्

प्रदान किया, दिया

दा + लङ् प्र. पु. ए. व.

अट् का लोप

दञ्हु- फ्राधनॉम् - वि. स्त्री, सं. दस्यु- प्रवर्धिनीम्

देश या जनपद को बढ़ाने वाली

दस्युं प्रवर्धयति या सा दस्युप्रवर्धिनी ताम्

द्वि. ए. व.

दञ्हु- पतयो - संज्ञा, पु., सं-दस्युपतय

जनपदों के स्वामी

दस्यूनां पतयः दस्युपतयः

प्र. व. व.

तु-पतिः, अवेस्ता-पइतिश्, ग्री. Posis, लै. Petis

दधिनम्- सं- दक्षिणम्

दायें, दाहिने

दाथ्रिश्- वि. स्त्री, सं-दात्री

प्रदात्री, प्रदान करने वाली

दा + तृच् + ङीप् प्र. ए. व.

दिम्- सर्व पु., सं- तम्

उससे, उसको

तद् द्वि० एक वचन

तु० दिम् - अंग्रेजी (Them, him)

(Them, बहुवचनार्थ प्रयुक्त)

दुज़्दो- वि. पु. सं - दुर्धीः

दुष्टा धीः यस्य

'दुर्बद्धि'

प्रथमा एकवचन

तु-दुज़्द, वेद-दूढ्यः (दुर्धियः) वयम जयेम पृतनासु दूढ्यः ऋ)

दुज़्दम्- वि. पु., सं- दुर्धियम्

द्वि. एकवचन

दुज़्दअेनम्- वि.पु., सं-दुर्धेनम्

दुष्टा धेना यस्य तम्

'दुष्टधर्मा'

द्वि. एकवचन

दूरात्- सं- दूरात्

दूर से

पञ्चमी एकवचन

द्रज़्इते-क्रिया, सं-दृढयते

'दृढ करती है'

दृढ् (नाम धातु)-लट् प्र. पु. ए. व. (आत्मने.)

द्रवताँम्- वि. पु., सं- द्रुह्यताम्

यद्वा द्रोहवताम्

द्रोहियों के

दुह्यताम्- द्रुह् + शतृ षष्ठी बहुवचन

द्रोहवताम्-द्रुह् + घञ् + मतुप् षष्ठी ब. व.

द्रव ँतम्-वि.पु, सं-दुह्यन्तम् यद्वा द्रोहवन्तम्

'द्रोहियों को'

द्वि एकवचन (शेष प्रक्रिया द्रवता ँम् वत्)

द्रूम्- सं- ध्रुवम्

ध्रुव, निश्चित

द्व-थ्रिष्व- सं-द्वि त्रिश्वम्

दो तिहाई

द्वितीया एक वचन

द्वअेप-संज्ञा, नपु, सं. द्वीपम्

द्वीप में

एकवचन, यहाँ द्वितीया विभक्ति सप्तम्यर्थक है (प्रति के योग में)

द्वरम्- संज्ञा, नपु., सं-द्वारम्

द्वार, मुहाना

द्वितीया एकवचन (उप के योग में, उपद्वरम्, द्वार के समीप)

तु. अंग्रेजी-Door, ज.-Tur, आ. फा. दर

नइरे-संज्ञा, पु. त्रे (नराय)

मनुष्य के लिए

नृ यद्वा नर-चतुर्थी एक वचन

नओतइर्योड.हो-संज्ञा, पु. सं- नैतर्यास:

नओतर (नौतर) लोगों ने

अर्थात् नओतर (नौतर) के कुल के लोगों ने

नौतर + जस् (असुक्-आगम्, आज्जसेरसुक् पा.)

नओतइर्याँनो-सं. पु. सं- नौतरायण:

नओतर का पुत्र

प्रथमा एकवचन

नरम्- संज्ञा, पु., सं- नरम्

मनुष्य को

नृ यद्वा नर द्वि. एकवचन

नर-संज्ञा, पु. सं.- नर:

मनुष्य

प्रथमा एकवचन

नव च नवतीम् च- 'नवं च नवति च' (संख्या)

नौ और नब्बे अर्थात् निन्यानवे

द्वि. एकवचन

नवशतैः- सं. नवशतैः

नौ सौ

तृ. बहुवचन

निजतॅम्- नपु., सं-निहतम्

मारे गये

नि + हन् + क्त प्र. ए. व.

तु. सं.-हत, अवेस्ता-जत, आ. फा. ज़द (खौफजद - भय का मारा)

तु. हन् , अंग्रेजी- Hunt, हत अं. Hit

निजनानि- क्रिया, सं-निहनानि

'मार दूँ'

नि + हन् लोट् उ. पु. एकवचन

निज़्ँग-क्रि. वि., सं- निजघनम्

एंड़ी तक

निपयेमि-क्रिया, सं-निपामि (निपायामि)

रक्षा करती हूँ

नि + पा + लट् उ. पु. ए. वचन

नियातयअे-संज्ञा, स्त्री, सं-निपात्यै

पूर्ण रक्षा के लिए

नि + पा + क्तिन् चतुर्थी एकवचन

निपाथ्रीम्-वि. स्त्री, सं- निपात्रीम्

रक्षिका

नि + पा + तृच् + ङीप् द्वि. ए. व.

तु. - सं. पातृ, अवेस्ता - पाथ्र > अंग्रेजी - Protector

निधातो-पितु-विशे., पु. सं.- निहितपितुः

निहतः पितुः यस्य

'रखे हुए खाद्यपदार्थ वाला

प्रभूत खाद्यपदार्थ से युक्त

प्र. ए. व., तु. पितु > अंग्रेजी Food

निपष्नक-वि. पु. सं- निपृतकाः (संज्ञावत् प्रयुक्त)

पीटने वाले, थपथपाने वाले

('पीटते हुए' प्रासङ्गिक अर्थ)

प्र. ब. व.

कुछ विद्वान् इस शब्द का अर्थ ईर्ष्यालु करते हैं,

जो अयुक्त है।

निवअेधयत्- सं-न्यवेदयत्

निवेदन किया

निवाजान-वि. पु. सं- निवाजान (निवाहन)

विद्वानों ने इसका अर्थ 'कस के बँधा हुआ'

'नीचे फूला हुआ' गतियुक्त आदि किया है।

नि + वह् (वज्) + घञ् द्वि. बहुवचन

निवयक- वि.पु. सं-निभयकाः

भय दिखाने वाला (भय दिखाते हुए)

नि + भी + (ण्वुल् ?)प्र. एक. वचन

निवानानि-क्रिया, सं-निवनानि

जीत लूँ

नि + वन् + लोट् उ. पु. ए. व.

तु. सं-वन् > अंग्रेजी Win

निशङ्.हरॅतयअे- संज्ञा, स्त्री.,सं- निस्संहृतये

व्यवस्था के लिए

निः + सम् + हृ + क्तिन् चतुर्थी ए.व.

निसिरिनवाहि- क्रिया, सं-निश्रृण्वासि

देती हो, देने की प्रतीज्ञा करती हो।

नि + श्रु लेट् म. पु. ए. व.

तु. गामाश्रिणोति, गां प्रतिश्रृणोति

नुरॅम्- क्रि.वि. सं-नूरम्

तुरन्त, नुरॅम (वि.) नूतन

तु. सं- नूनम्, नुकम्, अंग्रेजी-Now, New

न्मानॅम्- संज्ञा, नपु., सं-मानम्

गृह

द्वि. ए. व.

तु. बहन्तं मानं वरुण स्वधावः

सहस्रद्वारं जगमा गृहं ते (ऋक् 7.88.9)

न्मानहे- संज्ञा, नपु., सं- मानस्य

गृह का

षष्ठी एकवचन

न्माने- सं- माने

सप्तमी ए.व.

पहति-दानॅम्-संज्ञा,नपु. सं- प्रतिधानम्

लबादा, वस्त्र

प्रति + धा + ल्युट् द्वि. एकवचन

तु. सं. परिधान

पइति- अव्यम् सं-प्रति

प्रति

तु. प्रति - For (अंग्रेजी)

पइति-जइतीम्- संज्ञा, स्त्री, सं-प्रतिजितिम्

विजय

प्रति + जी + क्तिन् द्वि. ए. व.

पइति-पर्श्तो-स्त्रवड.ह्- विशे. पु., सं-प्रतिपृष्टश्रवाः

प्रतिपृष्टं श्रवः येन सः

'कीर्ति के लिए प्रश्नप्राट्'

'नियमों को स्वीकार करने वाला'

प्र. ए. व.

पइतिमुख़्त- नपु., प्रति-मुक्तम्

प्रहने हुए

प्रति + मुञ्च् + क्त् प्र. ए. व.

तु. - यज्ञोपवीतं प्रतिमुञ्च शुभ्रम्

पइति-ब्रवाने-क्रिया, सं-प्रतिब्रवाणि (प्रतिब्रवै)

उत्तर दे सकूँ

प्रति + ब्रू (म्रू) लो.उ.पु. एकवचन

यहाँ परस्मैपद एवं आत्मनेपद का मिश्रण है 'न' परस्मैपद का बोधक एवं 'ए' आत्मनेपद का बोधक है। भाषा विज्ञान की शब्दावली में इसे Blending कहा जाता है।

पइति-श्मरॅम्न- वि. स्त्री, सं-प्रति स्मरमाणा (प्रतिस्मरन्ती)

प्रतीक्षा करती हुई, स्मरण करती हुई

प्रति + स्मृ + शानच् + टाप् प्र. एकवचन

पइरि- अव्यय सं - परि

पइरि-अड्.:.रश्ताब्यो- विशे., स्त्री सं-परिसृष्टाभ्यः

सुनिर्मित

परि + सृज् + क्त + टाप् प. ब. व. ('अ' का अनियमित आगम) (तृतीयार्थ प्रयुक्त)

पइरि- अड्.हरश्तनाँम्, विशे. स्त्री सं-परिसृष्टानाम्

षष्ठी ब. व.

पइरि-वीसे-क्रिया, सं-प्रति-विच्छे

स्वीकार करती हूँ

प्रति + विच्छ् + लट् उ. पु. एकवचन

पओउर्व- क्रि.वि., सं-पूर्वम्

पहले

तु. पूर्व, अं. Pre, Before

पँचसघ्नाइ- सं- पञ्चाशद्घ्नाय (पञ्चाशद्धननाय)

पचास को मारने के लिए

चतुर्थी एकवचन

पय- संज्ञा, नपु. सं पयः

दुग्ध

द्वितीया एकवचन

पअेम्-संज्ञा, पु. सं-पयः

द्वितीया एकवचन (पयः का वैकल्पिक अवेस्तीय रूप, पुल्लिङ्.गवत् प्रयुक्त)

पॅरॅसत्- क्रिया, सं-अपृच्छत्

पूँछा

प्रच्छ् + लङ्. प्र. पु. ए. व.

पु. प्रच्छ्- प्राचीन उच्च जर्मन - Froscon

पॅरॅतत्- क्रिया, सं- अपृतत्

लड़ता है

पृत् + लङ्. प्र. पु. एकवचन। संस्कृत 'पृतना' (युद्ध) शब्द पृत् धातु से निष्पन्न है। पृत् से यही अंग्रेजी Beat एवं Fight क्रियापद निष्पन्न है। पृत् > पॅरॅत् >प्रा०फा०-परॅस्

त्बअेश-परश्तनाँम्-वि. पु., सं- द्वेषपृष्टानाम्

द्वेषवश पूँछे गये

षष्ठी बहुवचन

पस्वस् -संज्ञा पु., सं- पशवः

पशु

प्रथमा बहुवचन

तु. पशु, अ. Fee, Pequs

पस्च-अव्यय, सं- पश्चात्

बाद में

तु. पस्चा (अव) पश्च। (पालि) आ. फा. पस

पस्ने- संज्ञा, नपु. पृष्ठे

बाद में, पीछे

सप्तमी एकवचन

परथु-फ्राकाँम्-विशे.स्त्री सं- पृथुप्राञ्चिताम् 'विस्तृत प्रसार वाली'

द्वि. ए. वचन

पषनअेषु- संज्ञा, नपु. सं-पृतनेषु

युद्धों में

सप्तमी बहुवचन

पषनाहु- संज्ञा, स्त्री सं-पृतनासु

युद्धों में

सप्तमी एकवचन

पॅषुम्-संज्ञा, पु. सं-पन्थानम् (पथम्)

मार्ग को

द्वि. एकवचन

पॅरॅथु-अइनिकयो- विशे.स्त्री सं-पृथ्वनीकायाः

विशालाग्रभाग वाली

पृथु अनीकं यस्याः (तस्या)

षष्ठी एकवचन

तु. पृथु, ग्री. Plaus, अंग्रेजी, Broad, wide, ज. Brit

पाथ्राइ-संज्ञा, नपु. सं-पात्राय

रक्षा के लिए

पा > पात्र चतुर्थी एक वचन

तु. पाथ्र > आ. फा. पहरा

पाथ्र > अंग्रेजी - Protect

पुथ्रो-संज्ञा, पु., सं-पुत्रः

पुत्र

प्रथमा एक वचन

पुथ्रम् सं पुत्रम्

द्वि. एकवचन

पुथ्रोङ.हो- संज्ञा, पु. सं-पुत्रास

पुत्र लोग

प्रथमा बहुवचन (असुक्-आगम)

पुसाँम्- संज्ञा, स्त्री सं-पुसाम्

मुकुट को

द्वि. एकवचन

पोउर्वो- सर्व. पु. सं- पूर्वः

पहला, प्रथम

प्रथमा एकवचन

पोउरु-जिर-विशे. पु. सं-पुरुजीराः

'बृहत् शक्ति से युक्त'

यद्वा महाबुद्धिमान्

प्रथमा बहुवचन

पोउरु - स्पक्ष्तीम् - विशे. स्त्री, सं-पुरुस्पष्टिम्

बहुत से गुप्तचरों से युक्त

द्वि. एकवचन

तु. पुरु, अंग्रेजी- Poly, जर्मन - Voll

स्पष्टि - स्पश् + क्तिन्

तु. स्पश्, अंग्रेजी - spy, स्पश् > आ. फा. जासूस

तु. स्पश > पस्पशा, वेद - यतो व्रतानि पस्पशे

स्पश् > अंग्रेजी - See, जर्मन Sehen

फ्यङ्.हुम्- संज्ञा, पु. संज्ञा - प्युसुम्

'हिमवृष्टि'

द्वि. एकवचन

फ्रओथत् - अस्प - विशे. पु. सं - प्रोथदश्वः

प्रोथन्तः अश्वाः यस्य सः

खुर्राने वाले अश्वों वाला, हिनहिनाते घोड़ों वाला

प्र. एकवचन

प्रोथत् > प्रोथ् + शतृ (समास का पूर्वपद)

फ़्रकवो- विशे., पु., सं- प्रकवः

सीने पर कूबड़ वाला

प्र. एकवचन

अवेस्ता में जिसकी छाती पर कूबड़ उभरा होता है, उसके लिए 'फ़्रकव' एवं जिसके पीठ पर कूबड़ उभरा होता है, उसके लिए 'अपकव' शब्द प्रयुक्त है।

फ़्रङ.हरवँतु- क्रिया, सं- प्रस्वरन्तु

खायें, पान करे

प्र+ स्वृ + लोट् प्र. पु. बहुवचन (पर.)

तु. स्वृ.> अंग्रेजी - Swalloru ,स्वृ >ख्वृ >खॅर् > हॅर्

('क्' लोप) आ. फा. ख़ोर

फ़्ड.हुहर ॅ्ति- क्रिया, सं- प्रस्वरन्ति

खाते हैं, पान करते है।

प्र+ स्वृ + लट् प्र. पु. बहुवचन (पर.)

.फ्रच-अव्यय, सं-प्राक्

पीछे, पीछे की ओर

.फ्रज्गरति- क्रिया सं-प्रक्षरति

गिरती है, प्रक्षरित होती है

प्र + क्षर् + लट् प्र. पु. एकवचन (पर.)

प्रजुषम्- विशे. नपु. सं - प्रजुषम्

आरामदायक, कीमती

प्रकर्षेण जुष्यते इति

प्र + जुष् + क्विप् (कर्मणि) द्वि. एकवचन

तु जुस्, अंग्रेजी - (Re) Joice, लै. - Gustus

[illegible]ति- क्रिया. सं - प्रतचति

चलती है, सञ्चरण करती है

प्र + तच् (गतौ) लट् प्र. पु. एकवचन (परस्मैपद)

फ़्तच ॅ्ति- क्रिया. सं - प्रतचन्ति

सञ्चरित होते है

प्र +तच् + लट् प्र. पु. बहुवचन (परस्मैपद)

फ्रतॅमॅम्- विशे. पु. सं - प्रथमम्

प्रथम, पहला

द्वि. एकवचन (प्रथमार्थ प्रयुक्त)

तु. प्रा. फा- फ्रतम्., अग्रेजी-First,

[illegible] क्रिया, सं - प्रातचयत्

आगे बढ़ा दिया, चला दिया

प्र + तच् + णिच्+ लङ्. प्र. पु. एकवचन, (परस्मैपद)

फ्रदक्ष्त विशेषण प्र., सं - प्रदक्ष्तः

दागदार, चिह्नयुक्त

प्र. एकवचन

तु - दक्ष्त > आ. फा. दाग

फ्रदथाइ-संज्ञा, स्त्री, सं -प्रदात्यै

वृद्धि के लिए, प्रदान करने के लिए

यदयुपि इसका व्युत्पत्ति लभ्य अर्थ 'प्रदान करने के लिए' है
किन्तु यह अर्थ यहाँ असङ्गत है।

प्र + दा + क्तिन् चतुर्थी एकवचन

फ्रनॅ विशे., संस्कृत - पूर्णम्

सम्पूर्ण, पूरा

पृ > पूर्ण द्वि. ए. व.

पृ- Fill, पूर्ण > फ्रनॅ > Full

[illegible]पयेमि - क्रिया सं- प्रापयामि (प्राप्स्यामि)

पहुँचूंगा

प्र+ आप् + लट् + णिच् उ. पु. ए. व. (पर.)

'लट्' लृट् के अर्थ में प्रयुक्त (णिच् निरर्थक)

.फ्रबर ॅते- क्रिया   सं- प्रभरन्ते

प्रवाहित होते हैं,

प्र + भृ + लट् प्र. पु. बहुवचन (आत्मनेपद)

.फ्रवअेधम्न- विशे०स्त्री सं- प्रवेद्यमाना

स्मरण की जाती है, स्मरण किए जाने पर

प्र + विद् (कर्मवाच्य) + शानच् +टाप् प्र. ए. व.

.फ्रष-अव्यय-   सं- प्राक्

फ्रच का वैकल्पिक रूप

.फ्रष्न- संज्ञा, पु०   सं- प्रश्नान्

प्रश्नों को

प्रच्छ् + नञ (यजयाचयतविच्छरक्षोनङ्. पा० 3.3.90)

.फ्रषूसत् - क्रिया   सं- प्रास्थात्

प्रस्थान किया

प्र + स्था + लुङ्. प्र. पु. ए. व.

.फ्रसूतॉम्- विशे०स्त्री   सं- प्रश्रुताम्

प्रसिद्ध

प्र + श्रु + क्त + ताप् द्वि. एकवचन

.फ्रसस्तिश्- संज्ञा०स्त्री सं- प्रशस्तिः

प्रशंसा

प्र + शस् + क्तिन् प्रथमा एकवचन

(द्वितीयार्थ प्रयुक्त)

.फ्राघ्मत्- क्रिया संं- प्रागमत्

गई, पहुँची

प्र + गम् + लुङ् प्र. पु. एकवचन (परस्मैपद)

तु गम् - Go

.फ्राथ्वरॅसाँम्-विशेषण सं-प्रथ्वरसाम्

विस्तीर्ण, घने

प्रथ् > प्रथ्वरस् षष्ठी बहुवचन

.ायजाने- क्रिया, सं- प्रयजानि (प्रायजै)

यजन करूँ

प्र + आ + यज् + लोट् उ. पु. ए. व.

(आत्मनेपद एवं परस्मैपद का मिश्रण)

.फ्रायजअेष- क्रिया, सं - प्रायजेः

यजन करो, पूजो

प्र + आ + यज् + विधिलिङ् म. पु. ए. व.

.फ्राष्मो- दाइतीम् - क्रि. वि. सं - प्रोष्मोधितिम्

'सूर्यास्त तक'

.फ्षओनीश्च- संज्ञा, स्त्री,सं. - प्षुनीश्च

पीनता

द्वि. ब. व.

.फ्श्तान- संज्ञा,नपु, सं. - पयःस्थानम्

स्तन

प्र.ए.व.

तु. पयःस्थान >स्तन >थन

.फ्रायतयत्- क्रिया, - सं. - प्रायतयत्

गतिशील किया, प्रेरित किया

प्र + या + णिच् + लङ्. प्र. पु.ए. व.(परस्मैपद)

तु-मित्रो जनान् 'यातयति' ब्रुवाणः (ऋग्वेद)

'ब'

बअेवॅर- संख्या, नपु., सं. - बेवरम्

दश हजार

प्र. ए. व.

बअेवॅर-फ्रस्कम्बम्- विशे., नपु., - सं. - बेवरप्रस्कम्भम्

दश हजार खम्भे वाले

द्वि. ए. व.

बअेवरघ्नाइ- संज्ञा, नपु.,सं. - बेवरघ्नाय (बेवरहननाय)

दश हजार को मारने के लिए

च.ए.व.

बअेषज्याँम्- विशे., स्त्री., सं. - भेषज्याम्

ओषधीय गुण से सम्पन्न

द्वि.ए.व.

बरॅज़ङ्.त्- विशे., नपु., सं. - बृहतः

ऊँचा

बृहत्-प.ए.व.

बरॅम्नाइ- सं. - वरिम्णे

चढ़ने के लिए

च.ए.व.

बरज़ॅ्त -विशे. पु. सं. - बृहन्तः

ऊँचे

प्र.ब.व.

तु. बरज़ॅ्त , आ. फा.-बुलन्द

बरज़ॅ्तय -विशे. स्त्री., सं. - बृहत्याः

ष.ए.व.

बरॅजिश्- संज्ञा. नपु., सं. - बर्हिष् (बर्हिः)

उपधान, तकिया

प्र.ए.व.

बरॅस्मो-ज़स्त-विशे.पु., सं. - बर्ष्महस्तः

वर्ष्म (बरॅस्म) हाँथ में लिए हुए

वर्ष्म हस्ते यस्य सः

प्र.ए.व.

तु. जस्त > आ. फा.-दस्त (दस्तकारी)

बॅ्दयत्- क्रिया, सं. - अबन्धयत् (अबध्नात्)

बाँधती है।

बन्ध् + लङ्. प्र. पु. ए. व.(लट् के अर्थ में लङ्.)

तु. बन्ध् > अं. - Bind

बरामि- क्रिया, सं. - भरामि

धारण करता हूँ।

भृ+लट् उ. पु. ए. व.

बर- क्रिया, सं. - भर

दो, भर दो

भृ+लोट् म. पु. ए. व.

बरष्न- संज्ञा, सं. - वर्ष्णा

ऊँचाई से

तृ. ए. व.

बवइति- क्रिया, सं. - भवति

होता है।

भू + लट् प्र. पु. ए. व. (पर .)

तु. भू > अंग्रेजी- Be, तु. भूत > आ. फा.-बूद

बवइ ँति- क्रिया, सं. - भवन्ति

भू + लट् प्र. पु. ब. व. (पर .)

बवत्- क्रिया, सं. - अभवत्

हुआ

भू + लङ्. प्र. पु. ए. व. (पर .)

बओन- क्रिया, सं. - अभवन्

भू+लङ्. प्र. पु. ब. व. (पर .)

बवाति- क्रिया, सं. - भवाति

भू + लेट् प्र. पु. ए. व. (पर .)

'लेटोऽडाटौ'

बवानि- क्रिया, सं. - भवानि

होऊँ

भू + लोट् उ. पु. ए. व. (पर .)

बवाम- क्रिया, सं. - भवाम

होवें

भू + लोट् उ. पु. ब. व. (पर .)

बाज़व- संज्ञा, पु., सं. - बाहौ

बाहु में

बाहु-स.ए.व.

आ. फा.-बाजु

बाजु-स्तओयेहि- विशे, पु.,सं. - बाहुस्थूलैः (बाहुस्थूलेभिः)

घने बाहुओं से

तृ.ब.व.

बाम्य- विशे., नपु., सं. - भाम्या (भाम्यानि)

चमकदार, दीप्त

'भा' धातु से विकसित द्वि.ए.व.

नि का लोप-यथा वेद-विश्वा भुवनानि

शेश्छन्दसि बहुलम्

बिज़्ँग- विशे., पु., सं. - द्विजघनाः

दो जाँघों वाले, दो पैरों वाले

द्वे जघने येषां ते

प्र.ब.व.

तु. सं-द्वि, अवेस्ता- बि, अंग्रेजी-Bi

बोइत् - क्रिया., सं. - वेद

जानती हूँ

विद् + लट् उ.पु. ए. व.

तु. सं-विद्, अं.- Wit, Vision, ज.- Wissen

ब्राज्र ँत- क्रिया., सं. - भ्राजन्ते

चमकते हैं, दीप्त होते हैं

भ्राज् + लट् प्र. पु. ब. व.

तु.- भ्राज्, लै. Fulgur

तु. वि ये भ्राजन्ते सुमखास ऋष्टिभिः (ऋ.......)

बूयो - अव्यय, सं. - भूयः

बार-बार

'म'

मइध्यो - वि. पु. सं. - मध्यः

मध्य, मध्य भाग

प्र. ए. व.

तु. मध्य, अवेस्ता - मइध्य, अंग्रेजी- Mid, Amid ज. Mitte

आ. फा.- मियान

मइर्य - संज्ञा. पु. सं. - मर्यः

मनुष्य

प्र. ए. व.

मइनिम्न - विशे. स्त्री. सं. - मन्यमाना

सोचती हुई विचार करती हुई

मन + शानच् + टाप् प्र. ए. व.

मअेघम - संज्ञा. पु. सं. - मेघम्

बादल को

मिह् + घञ द्वि. ए. व.

तु.- मिह्, अंग्रेजी- Moist, लै.- Mingere

मकस्विश् - संज्ञा. पु. सं. - मा कस्विः

'मा' निषेधार्थक निपात

कस्विः- छोटा, ईर्ष्यालु

प्र. ए. व.

मज़्दधात - विशे. पु. सं. - मेधाहितः

(असुर) मेधा द्वारा स्थापित

धातु (हित) धा + क्त

प्र. ए. व.

मतफ्त - संज्ञा. पु. सं. - मा तप्तः

तप्तः- बुखार पीडित, ज्वरग्रस्त

तप् + क्त प्र. ए. व.

तु. तप्, अं.-Temperature

तु.-तप्त आ. फा.- तफ्तीद

मदह्म -संज्ञा. पु. सं. - मा दस्मः

दस्म-दीक्षित, निपुण, दक्ष

दस् > दह् + म =दह्म प्र. ए. व.

तु. लै- Dexter

तु. वेद- दस्र

मनङ.ह- संज्ञा, नपु. सं- मनसा

मन से यद्वा मन में

मन् + असुन् = मनस् तृतीया एकवचन

मम- सर्व. सं-मम

मेरी

अस्मद् षष्ठी ए. व.

तु.- मम - प्रा. फा.- मना

मॅरॅघहे- संज्ञा, पु., सं - मृगस्य

मृग - पक्षी (अवेस्ता में पक्षी का वाचक)

षष्ठी ए. व.

तु. - मृग > आ. फा.- मुर्ग, मुर्गा (पक्षिविशेष)

मश्या- संज्ञा, पु. सं - मर्त्याः

मनुष्य लोग

मृ + ण्यत् प्र. ब. व.

तु. सं - मर्त्य, पहल्. मर्त, आ. फा. - मर्द

अंग्रेजी- Mortal

मश्यानाम्- संज्ञा, पु. सं - मर्त्यानाम्

मनुष्यों का

षष्ठी ए. व.

मासचिश्- संज्ञा, पु., सं. - मा सचिः

सचिः - कायर, भीरु

('सचिः' चिपका रहने वाला, दुबका रहने वाला)

लाक्षणिक अर्थ - कायर

प्र. ए. व.

मस्त्री-संज्ञा, स्त्री — सं - मा स्त्री

स्त्री

प्र. ए. व.

मसो- विशे. नपु. — सं - महः (महती)

विस्तृत, बड़ी

प्र. ए. व.

व्यत्ययेन स्त्रीलिङ्.ग के स्थान पर नपुसंक विशेषण

तु. मसो - अंग्रेजी- Much

मसिताँम्- विशे. स्त्री — सं - महतीम् यद्वा महिताम्

पूजित, विस्तृत

मह् + क्त टाप् द्वि. ए. व.

यद्वा महत् + ङ.ीप् द्वि. ए. व.

मा- अव्यय — संस्कृत - मा

निषेधार्थद्योतक निपात

माज्द्रो- विशे. पु. — सं - मेधिरः

मेधासम्पन्न, मेधावी

प्र. ए. व.

माँथ्र- संज्ञा, पु. — मन्त्रेण

मन्त्र से तृतीया ए. व.

तु. आ. फा.- मान्थ्र

माँम्- सर्व. — सं-माम

	मुझे
	द्वितीया ए. व.
मिनुम्- संज्ञा, पु.	सं- मिनुम्
	कण्ठाभरण, हार
	द्वि. ए. व.
मीष्ति- क्रि. विशे.	सं. मीष्टि
	सदैव, हर समय
मे-सर्व.	सं.- मे
	मुझे
	अस्मद् चतुर्थी ए. व
	तु. अंग्रेजी- Me आ. फा.- मइय्
मोषु- अव्यय,	सं.-मक्षु
	शीघ्र
	तु.- मक्षू कृणुहि गोजितो नः (ऋग्वेद)
म्रओत- क्रिया	अब्रवीत् यद्वा अब्रूत्
	बोला
	ब्रू (म्रू) लङ् यद्वा लुङ् प्र. पु. ए. व.
यओजँत विशे. पु.	सं. युध्यन्तम्
	युद्ध करते हुए
	युध् + शतृ द्वि.ए.व.
यओज़्दाताब्यो-विशे.	सं.-योर्धाताभ्यः
	विशुद्धीकृत

यओज़् + धा पञ्चमी ब. व. (तृतीयार्थ प्रयुक्त)

यु > युज् > यओज् + धा = यओज़्दा

अवेस्ता में अनेक द्विधातुज धातुओं का प्रयोग हुआ है।

उन प्रयोगों में उक्त भी एक है। अन्य यथा-पज़्दा, निखब्दा

यओज ँति- क्रिया सं.- योजन्ति

उफना रहे है

सं.- युज् > यओज् लट् प्र.पु. ब.व. (अर्थपरिवर्तन)

अवेस्ता में युज् धातु का प्रयोग युद्ध करना एवं उफनाने के ही अर्थ में हुआ है। जुडने के अर्थ में वहाँ हच् (सच्) धातु ही प्रायः प्रयुक्त है। संस्कृत में रूप चलता है 'युज्यते' आदि।

यओजइति- क्रिया सं.- योजति

युज् > यओज् लट् प्र. पु. ए. व.

यओज़्दधाइति- क्रिया सं.- योर्दधाति

शुद्ध करती है।

यु > यओस् + धा, यओज् + दा लट् प्र. पु. ए. व.

यजम्नम्- संज्ञा पु. सं.- यजमानम

यजमान को

यज् + शानन् द्वि. ए. व.

यजअेष-क्रिया, सं.- यजेः

यजन करो, पूजो

यज् + विधिलिङ् म. पु. ए. व. (परस्मैपद)

तु.- यज्, प्रा. फा.- यद्

यजाइते- क्रिया, सं.- यजते

यजन करता है

यज् + लट् प्र. पु. ए. व.(आत्मने.)

यजाइ- क्रिया, सं.- यजामि

यजन करता हूँ

यज् + लट् उ. प्र. ए. व (पर.)

यजत- विशे. पु. सं.- यजतः

पूज्य, पूजनीय, यजनीय

यज् + अतच् प्र. ए. व.

तु. आ. फा.- एज़द (ईश्वर)

यजम्नाइ-संज्ञा पु. सं.- यजमानाय

यजमान के लिए

यज् + शानन् च. ए. व.

(पा. पुङ्.यजोः शानन्)

यजँ॒त- क्रिया, सं.- अयजन्त

यजन किया

यज् + लङ् प्र. पु. ब. व.

यजोँ॒ते- क्रिया, सं.- यजन्ते

यजन करते है, पूजते है

यज् + लट् प्र.पु. ब. व.(आत्मने.)

यजाने- क्रिया, सं.- यजानि

यजन करूँ

यज् + लोट् उ. पु. ए. व.

यत्- अव्यय

सं.- यत्

कि

यथ- अव्यय

सं.- यथा

जैसे

(सादृश्य का द्योतक निपात)

यह्मत्- सर्व, पु.

सं- यस्मात्

जिससे

यद् + पञ्चमी ए. व.

यस्न- संज्ञा, पु.

सं.- यज्ञेन

यज्ञ से, यज्ञ के द्वारा

यज् + नङ्. तृ. ए. व.

तु.- पह्-यज़्श्न

या-सर्व. स्त्री,

सं.- या

जो

यद् प्र. ए. व.

याँम्- सर्व. पु.

सं.- याम्

यद् द्वि. प्र. व.

याइश्-सर्व पु.

सं.- ये

जो

यद् तृ. ए. व.

यास्तयो- विशे., स्त्री, सं.- यताया:

यता > यस्ता- बँधी हुई

यम् + क्त + टाप् ष. ए. व. (सकार का आगम)

यिम्- सर्व. पु., सं.-यम्

जिसको

यद् + द्वि. ए. व.

येञ्हे-सर्व. स्त्री., सं.- यस्या

जिसका

यद् षष्ठी ए.व.

येस्न्याँम् -विशे. स्त्री., सं.- यजनीयाम्

यजनयोग्या

यज् + अनीयर् + टाप् द्वि. ए. व.

येजि- अव्यय, सं.- यदि

'यदि'

यो- सर्व. पु. सं.- यः

जो

यद् प्र. ए. व.

योइ-सर्व. स्त्री, सं.- ये

जो

यद् प्र. द्वि. व.

'र'

रअेचय-क्रिया, सं.- रेचय

खाली कर दो

रिच् + णिच्+ लोट् म. पु. ए. व.

तु. रिच् > रिक्त (खाली)

तु.- वि + रिच् > अं. Vacate

रअेचयत्- क्रिया, सं.- अरेचयत्

खाली कर दिया

रिच् + णिच्+ लङ् प्र. पु. ए. व. (पर.)

रअेवत्- विशे.नपु., सं.- रैमत् (समास का पूर्व पद)

धन संयुक्त

रै + मतुप्

रजुरम्-संज्ञा, नपु, सं.- रजुरम्

जंगल, वन

द्वि. ए. व.

तु.रजुर > सं लकुट, लगुड, अं.- Log (लकड़ी)

रतुम् संज्ञा, पु. सं.- ऋतुम्

ऋतु

द्वि.ए.व

रथअेश्तारो- विशे. पु., सं.-रथेष्ठा, रथेष्ठातर् (रथेष्ठाता)

रथे (स.ए.व.) + स्था + तृच् प्र. ए. व.

(अलुक् समास का अवेस्तीय उदाहरण)

रथअेश्तारम्- विशे. पु.,सं.- रथेष्ठातारम्

द्वि. ए. व.

रथ्वीम्- क्रि. वि. सं.- ऋत्वीम्, ऋत्व्यम्

ऋतु के अनुसार, समय पर

रस्मओयो- संज्ञा, स्त्री., सं.- रस्माया:

युद्ध में

रस्मा- ष. ए. व. (सप्तम्यर्थ प्रयुक्त)

तु. अवेस्ता - रस्मा > आ. फा. रज़्म (युद्ध)

रज़्म- ए- शयातीन (शैतान से युद्ध)

'व'

वओम-सर्व सं.- वयम्

हम सब

अस्मद् प्र. ब. व.

तु.- वयम्, अं.- We, प्रा. फा.- वयम्

वड्.हि- विशे.सम्बो.स्त्री.सं.- वस्वि

अच्छी, कान्तिशालिनि

वसु + ङीष् (वोतोगुणवचनात् पा. 4.1.44) संबो. ए. व.

वड्.हीम्- विशे.,स्त्री., सं.- वस्वीम्

द्वि. ए. व.

वच- संज्ञा, स्त्री, सं.- वाचा

वाणी से

वच् + क्विप् तृ. ए. व.

तु. ग्री.- Vox, आ. फा.- आवाज़

वचविश्- संज्ञा स्त्री, सं.- वाग्भिः

वाच् तृ. ए. व.

यद्वा वचस् तृ. ब. व. (नपु.)

वचङ.हत्- संज्ञा, नपु., सं.- वचसः

वाणी से

वच् + असुन् = वचस् पञ्चमी ए.व.

वजाइते- क्रिया, सं.- वहते

ढोती है, बढ़ाती है

वह् + लट् प्र. पु. ए. व.

तु.- वह् (वज्) ज.- Weg, रूसी- Vızu (गाड़ी)

वजम्न- विशे. स्त्री., सं.- वहमाना

ले जाती हुई

वह + शानच् + टाप् प्र. ए. व.

वज ॅ्ति- क्रिया, सं.- वहन्ति

ले जाते है

वह् + लट् प्र. पु. ब. व. (पर.)

व ॅ्त- संज्ञा, स्त्री, सं.- वनिते

दोनों पत्नियों को

वनिता- द्वि. द्विवचन

वतॅरॅतोतनुश्- विशे. पु.,सं. वितृततनुः

वितृता तनुः यस्य

बिगड़े शरीर वाला

प्र. ए. व.

वितृत- वि + तृ + क्त (समास का पूर्व पद)

वध्रेयओन- विशे. स्त्री., सं.- वध्रियोन्यः

वर्ध्रिः योनिः यासां ताः

बन्ध्या योनिवाली

तु.- वध्रि, हिन्दी- बधिया

वरथ्रजो- विशे. पु., सं.- वृत्रहा

शत्रुहन्ता

वृत्र-हन् + क्विप् प्र. ए. व.

शत्रुवाची 'वृत्र' शब्द वेद में नपुंसक लिङ्ग में प्रयुक्त है

वृताण्यन्यो अप्रतीनि हन्ति (ऋग्वेद0)

वरसॅनाम्-संज्ञा, सं.- वल्शानाम

वॅरॅस - बाल

षष्ठी ए. व.

वेद में वल्श का अर्थ टहनी है। वनस्पते शतवल्शः

वरनव-वीवाइश्-सज्ञा.न.,सं.- वृणवद्विषैः

घातक विष से

वृणवच्चेदं विषं तैः

तृ. ब. व.

वृणवत् -वृण् (हिंसायाम्) + मतुप् (समास का पूर्वपद)

तु. वृन्, अं.- Wound

वश्तार- संज्ञा पु. सं.- वोढारः

ढोने वाले, ले जाने वाले

वह् + तृच् प्र. ब.व.

वह्न्याँम्- विशे. स्त्री. सं.- ह्वानीयाम्

आह्वान योग्य

ह्वेञ् + अनीयर्+ टाप् द्वि. ए. व.

वाघ्ज़िव्यो - संज्ञा, स्त्री., सं.- वाग्भ्यः

वाणी से

वच् + क्विप् प. ब. व. (तृतीया के स्थान पर प्रयुक्त)

वाचिम्- संज्ञा, स्त्री., सं.- वाचम्

वाच्- द्वि. ए. व.

वातम् - संज्ञा, पु., सं.- वातम्

वायु

वा + क्त द्वि. ए. व.

तु वात- आ. फा.- बाद (बादी)

तु.- वात, अं.- Wind

वाथ्वो-फ्राधनाम्-विशे.स्त्री सं.- वात्व्यप्रवर्धिनी

द्वि. ए. व.

वारम् -संज्ञा, पु. सं.-वारि

जल

द्वि. ए. व.

(संस्कृत 'वार्' एवं 'वारि' दोनों नपुसंक है अतः लिङ्ग

निर्देश संस्कृत के ही अनुसार हैं किन्तु 'वारम्' पद की बनावट से ऐसा प्रतीत होता है कि यह अवेस्ता में पुल्लिंग)

वाषम्- संज्ञा, पु. सं.- वाहम्

सवारी, रथ

वह् + घम् द्वि. ए. व.

सं.- वाह (अश्व) स वाहवाहोचितवेषपेशलः (नैषध)

वाषहे- संज्ञा, पु., सं.- वाहस्य

षष्ठी. ए. व.

वाघ सं.- वाहे

स. ए. व.

विमीतोद ॅंतानो-विशे. पु. सं.- विभीतदन्ता

विमीताः दन्ताः येषां ते (बहुब्रीहि)

झड़े हुए दाँतो वाले

प्र. ब. व.

विमीत- वि+मीञ् (हिंसायाम्) + क्त (समास का पूर्वपद)

विवइतीम्-विशे. स्त्री. सं. विभातीम्

प्रकाश करती हुई

वि + भा + शतृ + ङीप् द्वि. ए. व.

वीचरॅंत- क्रिया, सं.- विचरनित

विचरण करते है

वि + चर् + लट् प्र. पु. ब. व.

तु.- विचर्, आ. फा.- गुजरना

वीजसाइति- क्रिया सं.- विगच्छति

जाती है, बहती है

वि + जस् (गम्) लट् प्र. पु. ए. व.

तु.- जस् (गम्), आ. फा.- गश्त

विदअेवाँम्-विशे.,स्त्री. सं.- विदेवाम्

देव विरोधिनी

द्वि. ए. व.

वीस्पो- सर्व स्त्री., सं.- विश्वाः

सम्पूर्ण

प्र. ब. व.

वीस्पे- सर्व. पु., सं.- विश्वे

सम्पूर्ण

प्र. ब. व.

वीस्पनाँम्- सर्व, पु., सं.- विश्वेषाम्

विश्व- ष. ब. व.

वीस्पाइश्- सं.- विश्वैः

तृ. ब. व.

वीस्पो-पीस- विशे.,नपु., सं.- [illegible]

सम्पूर्ण अलङ्.करणों से युक्त

पिश- पेशस-पीस्

तु.- पिश् (अलङ्.करणों) पिपिशे हिरण्यैः

वीसँति- क्रिया, सं.- विशन्ति

प्रवेश करते है

विश् + लट् - प्र. पु. ब. व.

'श'

श्यओथ्न - संज्ञा, नपु., सं.- च्यौत्नेन

कर्म 'स्तुति-कर्म'

तृ. ए. व.

'स'

सइते- क्रिया सं.- क्षयते

शासन करती है

क्षि शासने + लट् प्र. पु. ए. व.

तु.- सेदु राजा क्षयति चर्षणीनाम्

सओका- संज्ञा, पु. सं.- शोकाः

कल्याण, शुभ्रता

शुच् (दीप्तौ)+ घञ् प्र. पु. व.

सतम्-संख्या, सं.- शतम्

सौ

तु. लै.- Centun, आ. फा.- सद, अं.- Century

सतघ्ना - सं., नपु. सं.- सतहननाय

सौ कौ मारने के लिए

च. ए. व. (तुमुन् के अर्थ में)

सतो-रओचनाँम्- विशे. स्त्री., सं.- शतरोचनाम्

शतं रोचनानि यस्याः ताम्

सौ खिड़कियों वाली, सौ झरोखों वाली

द्वि. ए. व.

सतो- स्रड्.हाँम्- विशे. स्त्री, सं.- शत स्तृस्वाम् (शतस्तृस्वतीम्)

सौ सितारों या सौ रत्नों से युक्त

द्वि.ए. व.

सविश्ते- विशे., स्त्री., सं.- श्रविष्ठे

सर्वाधिक कीर्तिशालिनि

श्रवस् + इष्ठन्+ टाप् सम्बोधन ए. व.

यद्वा शविष्ठे

सर्वाधिक बलशालिनि

शवस् + इष्ठन्+ टाप् सम्बोधन ए. व.

साथ्राम्- संज्ञा, पु., सं. शास्तृणाम्

दुष्ट शासकों का

शास् + तृच् ष. ब. व.

सारम्- संज्ञा नपु. सं.- शिरः

शिरस्

द्वि. ए. व.

तु. आ. फा.- सर

सुरुन्वत्- विशे. पु. सं.- श्रृण्वतम् (श्रवणीयम्)

सुनने योग्य

द्वि. ए. व.

सूरम्- विशे. नपु. सं.- शूरम्

दृढ

द्वि. ए. व.

सूरयो- संज्ञा, स्त्री, सं.- शूरायाः

शूर वंश का

ष.ए.व.

स्कॅरॅनॅयो-विशे. स्त्री, सं.- स्कीर्णायाः

फैले हुए, विस्तृत

स्कृ + क्त + टाप् = स्कीर्णा ष. ए. व.

तु. स्कृ-अं.- Scatter

स्तरब्यो- संज्ञा, सं.- स्तृभ्यः

तारों से

तु.- स्तृ, अं.- Star, आ. फा.- सितार

स्तरमअेषु- सं.- स्तरमयेषु

शय्या से युक्त

स्तरमय-स्तृ आच्छादने > स्तर + मयट्, स. ब. व.

तु.- विस्तर, संस्तर

स्तओरा- संज्ञा, पु., सं.- स्थूराः

पशु समूह

प्र. ब. व.

तु.- स्थूर, अवे- स्तओर, अं.- Store (अर्थपरिवर्तन)

स्तवात्- क्रिया सं.- स्तूयात्

स्तवन करेगा

स्तु + विधिलिङ् (भविष्यदर्थे) प्र. पु. ए. व.

स्पार्थम- संज्ञा, पु. सं.- स्पृधम्

सिपाही, लड़ने वाला

स्पृध् + क्विप् - द्वि. ए. व.

स्पअेत- विशे. पु. सं. श्वेताः

श्वेत वर्ण वाले

श्वित् + घञ् प्र. ब. व.

तु.- श्वित्, अ.- स्पित, आ. फा.- सफेद, अं.- White

स्पानम्- संज्ञा, नपु., सं.- श्वानम्

सुख, लाभ

तु. स्पन्, अं. Bene, आ. फा. फ़न (कला)

स्पितम- विशे., पु. सम्बो. सं. श्वेततम

हे श्वेततम

स्पितम एक कुल का नाम है, जिसमें जरथुस्त्र पैदा हुआ था। इसीलिए यह जरथुस्त्र का विशेषण हो गया।

स्पितमाइ- सं.-श्वेततमाय

श्वेततम से

च. ए. व.

(ब्रु धातु के योग में चतुर्थी)

तु.- मनुरिक्ष्वाकवेऽब्रवीत् (गीता)

स्रीर - विशे., पु., सं.- श्रीरा

सुन्दर, श्रीयुक्त

श्री + रक् प्र. ब. व.

स्त्रअेश्त- विशे. स्त्री., सं.- श्रेष्ठे

श्रेष्ठ

प्रशस्य (श्र) + इष्ठन् प्र. द्वि. व.

स्त्रीराँम् - विशे., स्त्री., सं.- श्रीराम्

श्री + रक् + टाप् द्वि. ए. व.

स्त्रीरयाो - विशे., स्त्री., सं. श्रीरायाः

ष. ए. व.

ह

हअेनयाो- संज्ञा, स्त्री, सं.- सेनायाः

सेना का

ष. ए. व.

तु.- प्रा. फा.- हइना

हअेननाँम् - संज्ञा, स्त्री,सं.- सेनानाम्

सेना का

ष. ब. व.

हओमवइतिब्यो- संज्ञा, स्त्री,सं.- सोमवतीभ्यः

सोम के द्वारा

सोम + मतुप् + ङीप् ('भ्यस्' ऐस् के स्थान पर प्रयुक्त)

इसका यद्यपि मूल अर्थ 'सोम से युक्त' किन्तु यहाँ प्रसंगानुसार विशेषण, संज्ञावत् प्रयुक्त।

हओमवइतीनाँम्- सं. - सोमवतीनाम्

ष. ए. व.

हओमयो- गव- सं. - सोम-गवा (सोमगोभ्याम्)

सोमश्च गौश्च सोमगावौ ताभ्याम्

सोम एवं गोमांस से, अथवा सोम एव गोदुग्ध से

तु.- गोभिः श्रीणीत मत्सरम् (ऋग्वेद)

हओमनङ्हाइ - संज्ञा, नपु, सं. - सौमनस्याय

सौमनस्य के लिए

सुमनसः भावः सौमनस्यम् तस्मै

सुमनस् + ष्यञ् च. ए. व.

हच- अव्यय सं.- सचा

साथ

सच् समवाये से व्युत्पन्न अव्यय

हचमनाइ-संज्ञा, नपु., सं.- सचमननाय

साथ सोचने के लिए

मनाइ = मननाय- मन् + ल्युट् च. ए. व.

हज़ङ्रॅम् - संख्या सं.- सहस्रम्

एक हजार

तु.- हज़ङ्र, आ. फा.- हज़ार

हज़ङ्रघ्नाइ- सं.-सहस्रघ्नाय (सहस्रहननाय)

एक हजार को मारने के लिए

च. ए. व.

हज़ङ्र-यओक्ष्तीम्- विशे., पु., सं.- सहस्रयुक्तिम्

सहस्त्रों युक्तियों वाले

सहस्त्रं युक्तयः यस्य तम्

द्वि. ए. व.

हजङ्.रो- स्तूनम्-विशे. नपु., सं.- सहस्र- स्थूणम्

स्रहस्र खम्भे वाले

द्वि. ए. व.

हध- अव्यय सं.- सह, सध

साथ

तु.- प्रा. फा.- हध

हथ्रा-निवाइतिम्- संज्ञा, स्त्री., सं.-सत्रा निवातिम्

एक साथ विनाश, दीर्घकालीन विनाश

निवाति- नि + वा + क्तिन् द्वि. ए. व.

हध-हुनरो- विशे., पु., सं.- सध-सुनरः

गुणवान्

प्र. ए. व.

तु.- आ. फा.- हुनर

हन्- सर्व., स्त्री., सं.- अनया

इससे

इदम् + तृ. ए.व.

हमथ- क्रि. वि., सं.- समथ

सदैव

तु.- हमथ, आ. फा.- हमेशा

हम गओनोड.हो- विशे., पु., सं.- समगुणासः

एक जैसे गुण वाले, गुण में एक जैसे

प्र. ब. व. ('जस्' को 'असुक्'- आगम)

हम नाफ़्अेनि-विशे, नपु., सं.- समनाभ्यानि (समनाभयः)

एक ही कुल के

तु. सं.- सनाभिः

पु.के स्थान पर व्यत्ययेन नपु. का प्रयोग

तु. अं.- Nephew, आ. फा.- नवासा

हमॅरथनाँम्- विशे., पु., सं.- समरथानाम्

एक ही रथ पर स्थित

ष. ब. व.

चर्- चरथ (च का लोप) रथ, तु. अं.- Chariot

हरॅंतो विशे., पु., सं.- ह्वरन्तः

ईर्ष्यालु 'कुटिल'

ह्वृ + शतृ प्र. ब. व.

हरथ्राइ - संज्ञा, नपु., सं.- हरत्राय

व्यवस्था या सुरक्षा के लिए

च. ए. व.

हाइरिशीष्- संज्ञा, स्त्री, सं.- हृषीः (हस्राः)

स्त्रियाँ

द्वि. ब. व.

तु.- आ. फा.- हसीना

हाइरिषिनाँम्- सं.- हृषीणाम्

ष. ब. व.

हाचयेने-क्रिया, सं.- सचानि (सचै)

सम्पृक्त होऊँ

सच् समवाये + लोट् उ. पु. ए. व.

यह 'सचानि' एवं 'सचै' का मिश्रित रूप है।

संस्कृत में 'सच्' धातु आत्मनेपदी है।

हामिनम्- संज्ञा,पु., सं.- ऊष्माणम्

'गर्मी में' गर्मी के समय

द्वि. ए. व. (द्वितीया सप्तम्यर्थ प्रयुक्त)

हाम् ताषत्- क्रिया, सं.- समतक्षत्

निर्माण किया, बनाया

सम + तक्ष् + लङ् प्र. पु. ए. व. (पर.)

हँ्कइने-संज्ञा, नपु., सं.- सञ्चयने

गह्वर में, गुफा में

स. ए. व.

हँ्करमो -विशे., पु., सं.- सङ्कर्मा

समान कर्म वाला

प्र. ए. व.

हिज़्वारॅन्- संज्ञा, पु., सं.- सुजवारुणा

प्रबल पौरुष से

तृ. ए. व.

हिज़्वो - दड.हड.ह- संज्ञा, नपु., सं.- जिह्वा-दंससा

जिह्वा-चातुर्य से

तृ. ए.व.

तु.- हिज़्वा, आ. फा.- ज़ुबाँ

तु.- दंसस्, लै.- Dexter (चतुर)

हितअेइब्यो- संज्ञा,पु., सं.- हितेभ्यः

सम्बन्धियों के लिए

च. ए. व.

तु.- हिन्दी- हित्त-नात

हिश्तइते- क्रिया, सं.- तिष्ठते

स्थित है

स्था + लट् प्र. पु. ए. व. (आत्मने.)

तु.- स्था, अं.- Stay, Situate

हिश्त ॅंत- क्रिया, सं.- तिष्ठन्ते

स्थित रहते हैं

स्था + लट् + प्र. पु. ब. व. (आत्मने.)

हीश्-सर्व., स्त्री., सं.- सीः

वह

प्र. पु. ए. व.

तु.- ही अवे.- सी, (संस्कृत) अंग्रेजी- She

हीम्- सर्व., स्त्री., सं.- सीम्

द्वि. ए. व.

हुकरतम्- विशे., नपु., सं.- सुकृतम्

सुनिर्मित

सु + कृ + क्त प्र. ए. व. (तु. वेद-सुकृतं च योनिम्)

हुकॅरॅफ़्त- विशे., नपु. सं.- सुक्लृप्तम्

सुडौल

सु + क्लृप् + क्त प्र. ए. व.

हुजामितो- अव्यय, सं.- सुजामिताः

शोभन सन्तति से युक्त, सुरक्षित प्रसव

हुबओइधीम्- विशे., पु.,सं.- सुबोधिम्

सुगन्धित

तु बोधि > बओइधि (आ. फा. बू)

खुश (बू) बद (बू)

हुधातम्- विशे., नपु., सं.- सुधातम्, सुहितम्

सुनिर्मित या अच्छी बुनियाद वाला

सु + धा + क्त प्र. ए. व.

हुरओधयो- विशे., स्त्री,सं.- सुरोधायाः

सुष्ठु शरीर वाली का, सुस्वरूपा का

ष. ए. व.

हुरओधॉम्- विशे., स्त्री., सं.- सुरोधाम्

द्वि. ए. व.

हुश्कॅम्- विशे., पु., सं.- शुष्कम्

सूखा

शुष् + क्त (शुषः कः)

तु.- आ. फा.- खुश्क

तु.- शुष्, लिथु.- Sausas

हुयश्ततर- विशे. स्त्री, सं.- सुयजततरा

अच्छी तरह पूजने योग्य, सुयजनीयतरा

सु + यज् + अतच् + तरप् + टाप् प्र. ए. व.

हे- सर्व., पु., सं.- अस्य

इसका, इसकी

इदम् + ष. ए. व.

हो- सर्व., पु., सं.- सः

वह

तद् + प्र. ए. व.

तु.- हो, अं.- He

होयूम- संज्ञा, नपु., सं.- सव्यम्

बाएं

ह्वपो- विशे., पु., सं.- स्वपः

सुकर्मा

प्र. ए. व.

ह्वस्पाइ- विशे., पु., सं.- स्वश्वाय

शोभन अश्व वाले के लिए

शोभनः अश्वः यस्य तस्मै

च. ए. व.

ह्वाजात- विशे., स्त्री., सं.- सुजाता यद्वा स्वजाता

अभिजात अथवा स्वयं उत्पन्न

प्र. ए. व.

ह्वाफ़्रितो- विशे., पु., सं.- स्वाप्रीतः

कृपापात्र, अच्छे ढंग से प्रिय

प्र. ए. व.

ह्वाथ्वँो- विशे., पु., सं.- सुवास्त्वः

शोभन पशु वाला

प्र. ए. व.

ह्वापो- विशे., स्त्री., सं.- स्वापः

शुभ कर्म करने वाली

प्र. ब. व.

अधीत ग्रन्थ-सूची

ऋग्वेद — सायण-भाष्य, सम्पादन- मैक्समूलर चौखम्भा- 1966

अथर्ववेद — सातवलेकर, पारडी- 1957

वाजसनेयी संहिता — वासुदेव शास्त्री, निर्णयसागर बबई, 1929

शतपथ ब्राह्मण — सभाष्य, वेंकटेश्वर प्रेस, बम्बई, 1940

कात्यायन श्रौत सूत्र — कर्कभाष्य, विद्याधर शर्मा गौड़, चौखम्भा वाराणसी 1929

श्रीमद्भगवद्गीता (सानुवाद) — गीता प्रेस गोरखपुर

श्रीमद्भागवत (सानुवाद, दो खण्ड) — गीता प्रेस गोरखपुर

वाल्मीकि-रामायण (सानुवाद दो खण्ड) — गीता प्रेस गोरखपुर

वेदान्तसार — (सदानन्द)- व्याख्याकार- डॉ० सन्त नारायण श्रीवास्तव्य

पीयूष प्रकाशन, अलोपीबाग, इलाहाबाद तृ. सं. 1983

यज्ञ-प्रकाश — चिन्नस्वामी शास्त्री, कलकत्ता

दर्शपूर्णमास याग — डॉ० हरिशङ्कर त्रिपाठी, शारदा पुस्तक भवन विश्वविद्यालय मार्ग इलाहाबाद, 1989

अवेस्ता हओमयश्त् — डॉ० हरिशङ्कर त्रिपाठी, शारदा पुस्तक भवन विश्वविद्यालय मार्ग, इलाहाबाद, 1991

अवेस्ता कालीन ईरान- — डॉ० हरिशङ्कर त्रिपाठी, वेदपीठ प्रकाशन, प्रयाग 1993

सूक्तवाक्- — डॉ० हरिशङ्कर त्रिपाठी, वेदपीठ प्रकाशन, प्रयाग (द्वि. सं.) 1997

रसा से सदानीरा- — डॉ० हरिशङ्कर त्रिपाठी, वेदपीठ प्रकाशन, प्रयाग 1991

वेदावित्त प्रकाशिका-	प० क्षेत्रेशचन्द्र चट्टोपाध्याय, गङ्गानाथ झा केन्द्रीय संस्कृत विद्यापीठ, इलाहाबाद, 1997
	सम्पादक- डॉ० गया चरण त्रिपाठी एवं माया मालवीय
निरुक्त-	राजवाडे, पूना 1904, वेंकटेश्वर प्रेस बम्बई 1969
सिद्धान्त कौमुदी-	भट्टोजी दीक्षित, चौ. स. सि. वाराणसी
वैदिक इण्डेक्स-	मैकडानल एवं कीथ/ हिन्दी अनुवाद (2 खण्ड) चौ. वि. श. काशी
समुद्र- मन्थन-	डॉ० हरिशङ्कर त्रिपाठी, 2000
भाषा- विज्ञान-	भोला नाथ तिवारी, इलाहाबाद 1991
वैदिक साहित्य एवं संस्कृति	पं. बलदेव उपाध्याय- 1993 वाराणसी (प. सं.)
वैदिक देवशास्त्र-	मैकडानल कृत Vedic Mythology का हिन्दी अनुवाद सूर्यकान्त 1961
भाषा वैज्ञानिक निबन्ध संग्रह	डॉ० हरिशङ्कर त्रिपाठी, वेदपीठ प्रकाशन, प्रयाग 1993
प्राचीन फारसी शिला लेख	डॉ० हरिशङ्कर त्रिपाठी, अक्षयवट प्रकाशन इलाहाबाद 1994
प्राचीन विश्व की सभ्यताएं	डॉ० आर० एन० पाण्डेय, इलाहाबाद 1999
शाक द्वीपीय मग ब्राह्मण विमर्श	डॉ० राम नारायण मिश्र, रंगेश प्रकाशन, देवारिया, 1996
Sanskrit-English Dictionary	H H Wilson, Calcutta 1819
Avesta Part 1, 2	M. F. Kanga, N. S. Sontakke 1962
Avesta Reader	Hans Reichelt - Runber 1911
Avesta Reader	M. F. Kanga - Pune 1988
The Sacred Books of the East	

Vol IV, XXIII, XXXI	Ed F. Maxmuller, Tranlated by James Dermesteter & L H Mills, L.P P. Publication, Delhi 1995-96
Avesta Grammer in Comparision with Sanskrit	A V. W. Jackson
Zoroaster the Prophet of Iran	A V. W. Jackson, London 1901
The Foundations of Iranian Religions	Prof Louis H. Gray, Bombay, 1982
Studies in Vedic & Indo-Iranian Religion and Literature	K. C. Chattopadhyaya, Varansi, 1976
Persia Past & Present	A V W. Jackson, London 1906
Zoroastrian Theology	M. N. Dhalla, New York, 1914
Zoroastrian and his world	Ernst Herzfold, Princeton, 1947
History of Vedic Literature	C. V. Vaidya, Pune-1930
Gathas, their Philosophy	L H Mills, Oxford 1890
A comparative Dictionary of the Indo-Aryan Languages (4 Vol)	R L. Turner, Motilal Banarasi Das, Delhi
The Holy Gathas of Zarthustra	B T Anklesaria, Bombey 1953
Discourses on Iranian Literature	D. H Madan, Bombay, 1909
K.V Sharma Felicitation Volume	Shri S.E.S.R.L. Adyar, Chennai 2000
Citi-Vithika Vol-5. Nos 1-2 1999-2000	Allahabad, Museum

शब्द-संक्षेप

अं.	अंग्रेजी
अ. वे.	अथर्ववेद
अ. सू.	अर्द्धी सूर्
आ. फा.	आधुनिक फारसी
आत्मने	आत्मनेपद
उ. पु.	उत्तम पुरुष
ऋ.	ऋग्वेद
ए. व.	एकवचन
का. श्रौ. सू.	कात्यायन श्रौत सूत्र
क्रि.वि.	क्रिया विशेषण
ग्री.	ग्रीक
च.	चतुर्थी विभक्ति
ज.	जर्मन
तृ.	तृतीया विभक्ति
द्वि.	द्वितीया विभक्ति
द्वि. व.	द्विवचन
नपु.	नपुंसक
प.	पञ्चमी विभक्ति
पर.	परस्मैपद
पह्ल.	पह्लवी
पा.	पाणिनि

पु.	पुल्लिङ्.ग
प्र.	प्रथम। विभक्ति
प्र.पु.	प्रथम पुरुष
प्रा.फा.	प्राचीन फारसी
ब.व.	बहुवचन
म. पु.	मध्यम पुरुष
वा.रा.	वाल्मीकीय रामायण
वा.सं.	वाजसनेयी संहिता
विशे., वि.	विशेषण
श. ब्रा.	शतपथ ब्राह्मण
स.	सप्तमी विभक्ति
सम्बो.	सम्बोधन
सर्व.	सर्वनाम
स्त्री.	स्त्रीलिङ्.ग
लै.	लैटिन